वर्ष : 9, अंक : 33-34 (संयुक्तांक) जनवरी-जून 2025

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

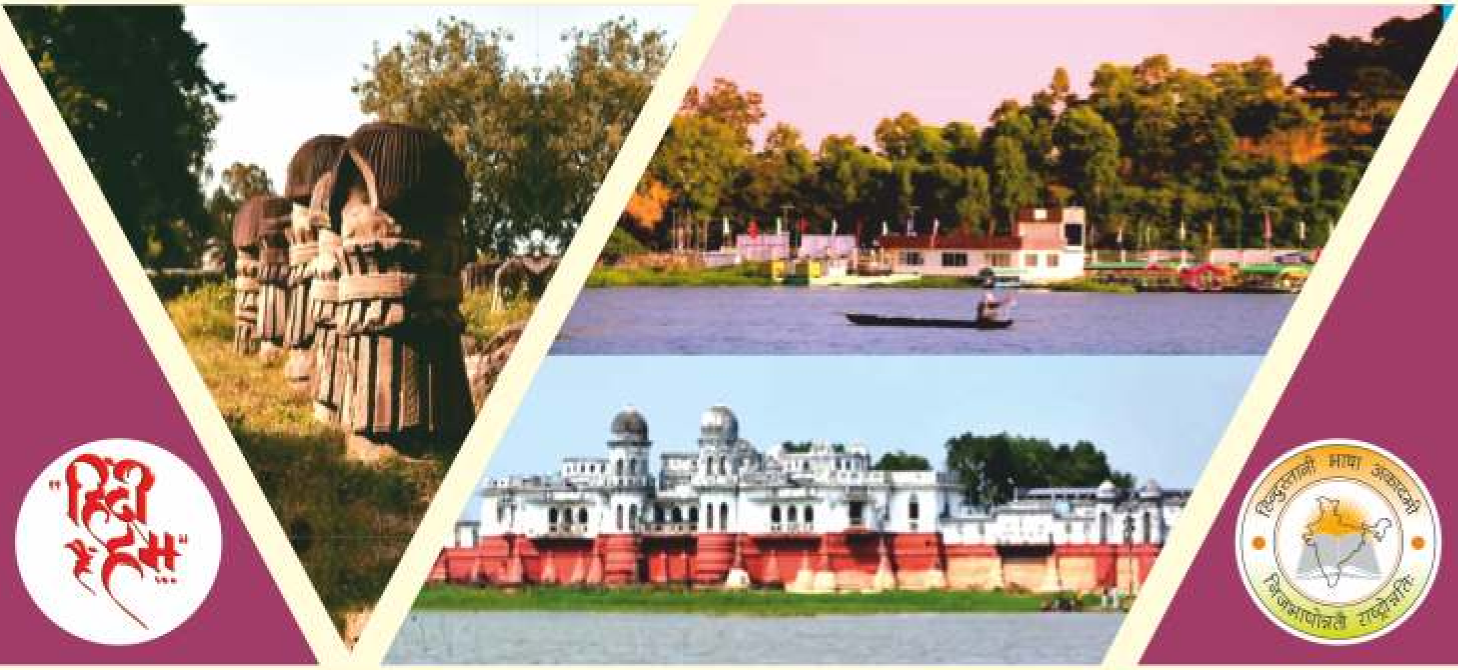

विशेष : पूर्वोत्तर राज्य विशेषांक

मेधावी छात्र एवं भारतीय भाषा शिक्षक सम्मान समारोह एवं 'भारतीय भाषा उत्सव' आयोजन : झलकियाँ

वर्ष : 9, अंक : 33-34 (संयुक्तांक)

हिन्दुस्तानी भाषा भारती

मूल्य : 30 रुपये

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित त्रैमासिक पत्रिका)

सम्पादक
सुधाकर बाबू पाठक

प्रबन्ध सम्पादक : विजय कुमार शर्मा
परामर्श सम्पादक : सुरेखा शर्मा
संयुक्त सम्पादक : राजकुमार श्रेष्ठ
सह सम्पादक : सागर समीप
उप सम्पादक : सरोज शर्मा
: सुषमा भण्डारी
: डॉ. सोनिया अरोड़ा
: शशि प्रकाश पाठक
सम्पादकीय सलाहकार : डॉ. वनीता शर्मा
: गरिमा संजय
: विनोद पाराशर
वित्तीय सलाहकार : राम सिंह मेहता

कार्यालय :
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी
म.नं. 3675, राजा पार्क, शकूरबस्ती, दिल्ली-110034
ई-मेल : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
वेबसाइट : www.hindustanibhashaakadami.com
सम्पर्क सूत्र : 09873556781, 09968097816

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में लेखकों के अपने विचार हैं । प्रकाशक का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

सभी विवादों का निपटारा दिल्ली/नई दिल्ली की सीमा में आने वाली सक्षम अदालतों और फोरमों में ही किया जाएगा ।

सम्पादन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक और अव्यावसायिक है ।

प्रकाशक, सम्पादक व मुद्रक सुधाकर बाबू पाठक द्वारा स्वामी हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी ट्रस्ट, 3675, राजा पार्क, शकूर बस्ती, दिल्ली-110034 के लिए प्रकाशित और सन्नी प्रिन्टर्स, बी-234, नारायणा इन्डस्ट्रियल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028 से मुद्रित ।

विषय सूची

सम्पादकीय : यह भाषाई जागरुकता का समय है — 04
रिपोर्ट : 'हिन्दुस्तानी भाषा काव्य प्रतिभा सम्मान एवं पुस्तक लोकार्पण समारोह' — 05
'हिन्दुस्तानी भाषा काव्य प्रतिभा सम्मान एवं पुस्तक लोकार्पण समारोह' के चित्र — 06
रिपोर्ट : हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा गणतंत्र दिवस पर परिचर्चा और काव्य सम्मेलन का आयोजन सम्पन्न — 07
गणतंत्र दिवस पर परिचर्चा और काव्य सम्मेलन आयोजन के चित्र — 08
अरुण-हिन्दी और अरुणाचल प्रदेश की भाषाई परिदृश्य -विजय नगरकर — 09-10
अरुणाचल प्रदेश के आदी जनजातीय लोकगीतों में प्रकृति चित्रण -डॉ. बनश्री पर्तिन — 11 -12
अरुणाचल प्रदेश के न्यीशी समुदाय का सामान्य परिचय -डॉ. मेमा चिरी — 13-15
मणिपुर में नेपाली नाट्य-परम्परा और प्रवृत्ति -डॉ. गोमा देवी शर्मा — 16-18
न्यीशी लोकगाथाओं में अभिव्यक्त समाज -डॉ. ङूरी शांति — 19-23
पूर्वोत्तर भारत का भाषाई परिदृश्य और हिन्दी की स्थिति -विरेन्द्र परमार — 24-26
भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी की चुनौतियाँ और संभावनाएँ -डॉ. दिग्विजय शर्मा — 27-30
पत्तों पर पानी डालने से नहीं, जड़ों को सींचने से बढ़ेगी भारतीय भाषाएँ — 31
भारत की पहाड़ी भाषाएँ -शैलेन्द्र चौहान — 32-33
दशैं -गीता लिम्बू — 34
पद्मश्री प्रतिमा बरुआ पांडे -कल्पना देवी आत्रेय — 35-37
मूल खासी 'जनजातीय' संस्कृति में नैतिक मूल्य -डॉ. अनीता पंडा — 38-40
दो पाठ्यक्रम के विचारणीय प्रश्न -प्रेमपाल शर्मा — 41-42
युवा मत : कॉरपोरेट जगत में हिन्दी भाषा के प्रति उदासीनता -सुनीता मिश्रा — 43-44
रिपोर्ट :
पूर्वोत्तर हिन्दी साहित्य अकादमी ने मनाया दसवाँ स्थापना दिवस -रीता सिंह 'सर्जना' — 45
पूर्वोत्तर हिन्दी साहित्य अकादमी के दसवें स्थापना दिवस के चित्र — 46
'होली मंगल मिलन एवं काव्य उत्सव' एवं 'सामाजिक सौहार्द व सहिष्णुता का पर्व होली' परिचर्चा का आयोजन सम्पन्न -गरिमा संजय — 47
'होली मंगल मिलन एवं काव्य उत्सव' एवं 'सामाजिक सौहार्द व सहिष्णुता का पर्व होली' परिचर्चा के चित्र — 48
तीन दिवसीय श्रावस्ती : पर्यटन एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजन सम्पन्न -विजय कुमार शर्मा — 49
तीन दिवसीय श्रावस्ती : पर्यटन एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजन के चित्र — 50

सम्पादकीय

यह भाषाई जागरुकता का समय है।

सुधाकर पाठक
सम्पादक एवं अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

भाषा न केवल संवाद का माध्यम है, बल्कि यह हमें विभिन्न समाज, संस्कृति, कला, परिवेश और परम्पराओं से जोड़ती है। किसी भी भाषा को सीखना कदाचित अनुपयोगी नहीं होता। हम जितनी भाषाएँ सीखेंगे उतना ही हमारा व्यक्तित्व निर्माण भी सुदृढ़ होगा। प्रत्येक भाषा जन-संपर्क का एक सशक्त माध्यम होती है, इसके साथ ही उस भाषा में निहित सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक, बौद्धिक ज्ञान-कौशल भी उतना ही सक्षम होता है। अपनी मातृभाषा और संपर्क भाषा के अतिरिक्त हम जितनी अधिक भाषाओं को सीखेंगे, हमारा भाषाई ज्ञानवर्धन उतना ही अधिक होगा, साथ ही बहुआयामिक दृष्टि से सोचने, समझने और चिंतन करने की प्रवृत्ति का विकास भी होगा।

पहले भाषाओं का उद्देश्य केवल संवाद स्थापित करने और विचारों का आदान-प्रदान करने तक ही केन्द्रित हुआ करता था। समय के साथ भाषा का उद्देश्य भी बदलता गया। तकनीकी और प्रौद्योगिकी के इस युग में भाषा का अनुप्रयोग शिक्षा, शोध, अनुसंधान और रोजगार से जुड़ गया। आधुनिक शिक्षा प्रणाली में उन भाषाओं का विकास रुक गया, जो केवल नैतिक शिक्षा और पारंपरिक ज्ञान-कौशल तक सीमित थीं। प्रमुख भारतीय भाषाओं जिनके बोलने वालों की संख्या अधिक हैं; जैसे हिन्दी, बंगाली, मराठी, तेलुगु आदि का भी साहित्यिक विकास से इतर कोई विशेष योगदान नहीं है। आज भी हम विद्यालयों/महाविद्यालयों में अपनी भाषा में केवल साहित्य ही पढ़ रहे हैं, न कि गणित, चिकित्सा, विज्ञान, प्रबंधन और इंजीनियरिंग आदि।

एक अनुसंधान के अनुसार भारत और चीन की साक्षरता वृद्धि दर लगभग समान है फिर भी विकास की गति में हम उनसे बहुत पीछे हैं। इसका मुख्य कारण है, चीन अपनी भाषा में देश के नागरिकों को गणित, चिकित्सा, विज्ञान, प्रबंधन और इंजीनियरिंग जैसे विषयों की शिक्षा देता है और हम भूगोल, मानविकी एवं इतिहास जैसे विषयों को भी अंग्रेजी माध्यम से पढ़ते हैं। जापान और जर्मनी जैसे देश अपनी भाषाओं में उन्नत तकनीकी शिक्षा देते हैं, जो छात्रों की समझ को गहरा बनाती है और राष्ट्रीय विकास में योगदान देती है। वहीं, भारत में मातृभाषा में शिक्षा की कमी से छात्रों में अवधारणाएं कमजोर रहती हैं, जिसका प्रभाव आर्थिक विकास पर पड़ता है। विभिन्न अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि मातृभाषा में शिक्षा से साक्षरता कौशल 40-60% अधिक विकसित होती हैं।

एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा को सीखना बुरा नहीं है, किन्तु अंग्रेजी मानसिकता को ओढ़ना बुरा है। अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और सूचनाओं के संग्रहण के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है, किन्तु इसे जीवन का अनिवार्य हिस्सा नहीं बनाना चाहिए। किसी देश के उत्थान में उस देश की शिक्षा नीति और शिक्षा के माध्यम की भाषा की बहुत बड़ी भूमिका होती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 प्राथमिक स्तर तक मातृभाषा में शिक्षा देने पर जोर तो देती है, किन्तु इसके कार्यान्वयन को लेकर अभी भी कोई स्पष्ट नीति नहीं दिख रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के लागू होने के बाद भी विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम की भाषा और शासन-प्रशासन की चहेती भाषा अंग्रेजी ही बनी हुई है। यह सत्य है कि अंग्रेजी हमें वैश्विक अवसर प्रदान करती है, जैसे कि आई.टी सेक्टर, बहुराष्ट्रीय कंपनियों में रोजगार, लेकिन यह हमारी सांस्कृतिक पहचान को कमजोर भी करती है। भारत में अंग्रेजी पर अत्यधिक निर्भरता ने क्षेत्रीय भाषाओं के विकास को अवरुद्ध किया है। साथ ही, विभिन्न भारतीय भाषाई समुदायों के बीच अपनी भाषा को लेकर तनाव और वैमनस्य बढ़ रहा है। पहले यह स्थिति हिन्दी और तमिल के बीच देखने को मिलती थी, किन्तु अब यह हिन्दी भाषी राज्यों और महाराष्ट्र जैसे क्षेत्रों में भी उभर रही है। यह समय भाषाई कटुता या क्षेत्रवाद को बढ़ावा देने का नहीं, बल्कि भाषाई जागरूकता और समन्वय को प्रोत्साहित करने का है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 सभी भारतीय भाषाओं को बढ़ावा देने और सभी भाषाओं के विकास की बात करता है। यह एक अच्छी पहल है, जिसके परिणामस्वरूप सरकारी कार्यालयों में मातृभाषा के उपयोग में सकारात्मक बदलाव देखने को मिला है। उच्च शिक्षा और प्रशासनिक सेवाओं की परीक्षाओं में भी भारतीय भाषाओं के प्रति जागरूकता बढ़ी है। भारतीय भाषाओं के संरक्षण और उन्नयन के लिए उन्हें विज्ञान, प्रौद्योगिकी और तकनीकी शिक्षा से जोड़ना आवश्यक है। प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालयों, अभियांत्रिकी, चिकित्सा और शोध संस्थानों में मातृभाषा को प्राथमिकता देनी होगी। जब हम गणित, विज्ञान और शासन-प्रशासन में मातृभाषा को अपनाएंगे, साथ ही इसे दैनिक जीवन में प्राथमिकता देंगे, तो भारतीय भाषाओं का विकास स्वाभाविक रूप से होगा। इति शुभम्...

-सुधाकर पाठक
अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

रिपोर्ट

'हिन्दुस्तानी भाषा काव्य प्रतिभा सम्मान एवं पुस्तक लोकार्पण समारोह' का आयोजन सम्पन्न

भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन के लिए समर्पित स्ववित्तपोषित संस्था 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' द्वारा रविवार, 18 मई, 2025 को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के गीतांजलि सभागार में बहुप्रतीक्षित 'हिन्दुस्तानी भाषा काव्य प्रतिभा सम्मान 2024' का आयोजन भव्य रूप से सम्पन्न किया गया । दीप प्रज्ज्वलन एवं अतिथियों के सम्मान के बाद कार्यक्रम को विधिवत रूप से शुभारम्भ किया गया ।

मंचासीन अतिथियों के रूप में वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. लक्ष्मी शंकर वाजपेयी जी ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की । अन्य मंचासीन अतिथियों में मुख्य अतिथि के रूप में प्रसिद्ध गज़लकार श्री देवेंद्र माँझी जी, विशिष्ट अतिथि के रूप में लेखक, संपादक व प्रकाशक डॉ. संजीव कुमार जी एवं हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के यशस्वी अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक जी उपस्थिति थे ।

कार्यक्रम के प्रारंभ में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के नगर निगम शिक्षक प्रकोष्ठ की एक शिक्षक मंडली ने सरस्वती वंदना, लोक गीत, और सांस्कृतिक नृत्यों की मनमोहक प्रस्तुति दी । सुश्री शशि किरण और अन्य शिक्षकों की इस प्रस्तुति ने सभागार में अप्रतिम माहौल बनाया ।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने अपने स्वागत वक्तव्य में आयोजन के उद्देश्य और अकादमी की साहित्यिक यात्रा पर प्रकाश डाला । उन्होंने बताया कि अकादमी पिछले कई वर्षों से हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में उत्कृष्ट लेखन को प्रोत्साहित करने के लिए यह प्रतिष्ठित पुरस्कार प्रदान कर रही है । यह तृतीय काव्य प्रतिभा सम्मान था, जो इस बार हिन्दी साहित्य की प्राचीन और समृद्ध दोहा विधा को समर्पित था। इससे पहले यह सम्मान 'गीत' और 'गजल' विधाओं के लिए प्रदान किया जा चुका है।

उन्होंने आगे बताया कि विगत कुछ दशकों में दोहा विधा में साहित्यिक रचनात्मकता में कमी देखी गई है । नए रचनाकारों का ध्यान अधिकतर गजल और अन्य आधुनिक विधाओं की ओर रहा है, जिसके कारण दोहा विधा की सृजनात्मकता में शिथिलता आई है । फिर भी, कुछ समर्पित साहित्यकारों ने इस विधा को जीवित रखा है । इस कमी को दूर करने और दोहा विधा को पुनर्जनन प्रदान करने के उद्देश्य से अकादमी ने तृतीय 'हिन्दुस्तानी भाषा काव्य प्रतिभा सम्मान' और नि:शुल्क पुस्तक प्रकाशन योजना की शुरुआत की । इस योजना के अंतर्गत अखिल भारतीय स्तर पर रचनाकारों से प्रविष्टियाँ आमंत्रित की गईं, जिसका उत्साहजनक और अप्रत्याशित रूप से सकारात्मक प्रतिसाद प्राप्त हुआ ।

इस योजना के अंतर्गत अकादमी ने रचनाकारों से संक्षिप्त परिचय और स्वरचित, मौलिक 15 दोहों की प्रविष्टियाँ माँगी थीं । पूरे भारत से कुल 237 प्रविष्टियाँ प्राप्त हुईं, जो दोहा विधा के प्रति रचनाकारों के उत्साह और अनुराग को दर्शाती हैं । निर्णायक मंडल ने इन प्रविष्टियों में से 51 श्रेष्ठ रचनाओं का चयन किया, जिन्हें एक साझा दोहा संग्रह 'नावक के तीर' में संकलित किया गया । इस संग्रह का प्रकाशन डॉ. संजीव कुमार के प्रकाशन संस्थान 'इंडिया नेटबुक' द्वारा किया गया है।

राजकुमार श्रेष्ठ

चयन समिति ने युवा कवि, लेखक और संपादक श्री राहुल शिवाय को उनके उत्कृष्ट दोहों के लिए सर्वश्रेष्ठ दोहाकार के रूप में चुना । मंचासीन अतिथियों द्वारा उन्हें 'हिन्दुस्तानी भाषा काव्य प्रतिभा सम्मान 2024' से सम्मानित किया गया । सम्मानस्वरूप उन्हें एक स्मृति चिह्न, प्रशस्ति पत्र, नगद पुरस्कार राशि, और 'नावक के तीर' की एक प्रति प्रदान की गई । इस योजना में चयनित अन्य 50 चयनित दोहाकारों को भी अंगवस्त्र, स्मृति चिह्न और पुस्तक की प्रति देकर सम्मानित किया गया ।

सम्मानित दोहाकारों ने अपने प्रतिनिधि दोहों का पाठ भी किया, जिसने सभागार में साहित्यिक रस की बौछार कर दी । दोहों की गहन भावनाएँ, सामाजिक चेतना और साहित्यिक सौंदर्य ने उपस्थित श्रोताओं को भावविभोर कर दिया । इसके साथ ही, 'नावक के तीर' दोहा संग्रह का लोकार्पण मंचासीन अतिथियों द्वारा किया गया । यह संग्रह हिन्दी साहित्य की दोहा विधा में एक महत्त्वपूर्ण योगदान है, जो भविष्य में इस विधा के अध्ययन और प्रचार-प्रसार के लिए एक आधार प्रदान करेगा ।

इस अवसर पर राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के प्रतिष्ठित साहित्यकारों, रंगकर्मियों, समाजसेवियों और शिक्षाविदों को भी आमंत्रित किया गया था । अकादमी ने सभी उपस्थित अतिथियों को सम्मानित किया, जिनमें सुश्री यति शर्मा, श्री भारत भूषण शर्मा, श्री किशोर श्रीवास्तव, सुश्री शालिनी श्रीवास्तव, सुश्री चंद्रकांता सिवाय, डॉ. कविता मल्होत्रा, श्री राजेश श्रीवास्तव, सुश्री ऊषा श्रीवास्तव, सुश्री पूजा श्रीवास्तव, सुश्री दीपा गुप्ता, श्री अमित गुप्ता, श्री सान्निध्य गुप्ता, श्री राजव्रत आर्य, सुश्री दीपा शर्मा, सुश्री उमंग सरीन, सुश्री फातिमा किरमानी, श्री विवेक मिश्र आदि शामिल थे ।

सम्मान समारोह का संचालन अकादमी के सम्पादकीय सलाहकार और केंद्रीय कार्यकारिणी सदस्य श्री विनोद पाराशर ने कुशलतापूर्वक किया । उनकी साहित्यिक संवेदनशीलता और मंच संचालन की कला ने कार्यक्रम को सुचारु और आकर्षक बनाए रखा । कार्यक्रम में अकादमी की केंद्रीय कार्यकारिणी के पदाधिकारी श्री विजय कुमार शर्मा, डॉ. वनीता शर्मा, श्री राजकुमार श्रेष्ठ, श्री विनीत पांडे और सुश्री प्रकाश कंवर की विशेष उपस्थिति थी ।

-राजकुमार श्रेष्ठ

'हिन्दुस्तानी भाषा काव्य प्रतिभा सम्मान एवं पुस्तक लोकार्पण समारोह' आयोजन के चित्र

रिपोर्ट

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा गणतंत्र दिवस पर परिचर्चा और काव्य सम्मेलन का आयोजन सम्पन्न

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा रविवार, 26 जनवरी, 2025 को रोहिणी स्थित अकादमी के सभा–कक्ष में 76वें गणतंत्र दिवस पर परिचर्चा 'लोकतंत्र में भाषा तंत्र' एवं काव्य सम्मेलन का आयोजन सम्पन्न किया गया। दीप प्रज्ज्वलन एवं अतिथियों के सम्मान के बाद कार्यक्रम को विधिवत रूप से शुभारम्भ किया गया।

परिचर्चा में श्री उदय सिंह राठौड़, निदेशक, कैरेट लॉज एकेडेमी, डॉ. अनुराग सिंह शेखर, सहायक प्राध्यापक, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, श्री अंकित देव अर्पण, संस्थापक, राइटर्स कम्युनिटी और हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के यशस्वी अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक मंचासीन थे। मंचासीन अतिथियों ने लोकतंत्र में भाषा की उपस्थिति, लोकतंत्र का महत्त्व, संविधान में भाषा की संवेदनशीलता, वर्तमान परिदृश्य में नागरिकों और राजनेताओं के भाषा संस्कार, नई पीढ़ी में भाषा का सौन्दर्य बोध जैसे गंभीर विषयों को अपने वक्तव्यों में उठाया। इस परिचर्चा का संचालन हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के संयुक्त सम्पादक श्री राजकुमार श्रेष्ठ ने किया।

द्वितीय सत्र में कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसमें वरिष्ठ साहित्यकार एवं पूर्व अतिरिक्त महानिदेशक, आकाशवाणी डॉ. लक्ष्मी शंकर वाजपेयी, प्रतिष्ठित कवयित्री एवं शिक्षाविद डॉ. सीता सागर, श्रीमती ममता किरण, डॉ. भावना तिवारी एवं श्री मनोज मिश्र कप्तान मंचासीन थे। श्रीमती भावना तिवारी के सरस्वती वंदना से काव्य सम्मेलन को शुरू किया गया। श्री मनोज मिश्र कप्तान ने सामाजिक विसंगतियों पर काव्य पाठ किया। श्रीमती ममता किरण ने अपने संवेदनशील ग़ज़लों से दर्शकों को भावविभोर किया। श्रीमती भावना तिवारी ने वीर रस प्रधान गीतों से समां बाँधा, तो वहीं डॉ. सीता सागर के सूफी और श्रृंगार गीतों ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया। डॉ. लक्ष्मीशंकर वाजपेयी जी के मानवीय संवेदनाओं को स्पर्श करती ग़ज़लों ने दर्शकों को झकझोरने का काम किया। बहुत ही शांत वातावरण में कवि सम्मेलन अपने चरम उत्कर्ष पर था। इस सम्मेलन में सुश्री सीमा सिकंदर, सुश्री इंदु मिश्र 'किरण', श्री सुन्दर सिंह, सुश्री सुषमा भण्डारी आदि ने भी अपनी रचनाओं से दर्शकों का ध्यान आकर्षित किया।

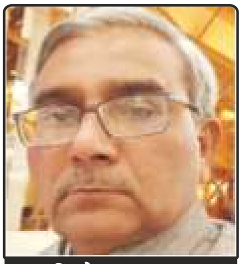
विनोद पाराशर

इस काव्य सम्मेलन का संचालन हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के पदाधिकारी एवं सलाहकर संपादक श्री विनोद पाराशर ने किया। दोनों सत्रों का धन्यवाद ज्ञापन हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने किया। कार्यक्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों, स्थानीय साहित्यकारों, दिल्ली प्रदेश के विभिन्न विद्यालयों के शिक्षकों आदि की उपस्थिति थी। इस अवसर पर अकादमी के पदाधिकारियों में श्रीमती सरोज शर्मा, सुश्री गरिमा संजय, डॉ. वनिता शर्मा और श्री विजय शर्मा की विशेष उपस्थिति थी।

गणतंत्र दिवस पर परिचर्चा और काव्य सम्मेलन आयोजन के चित्र

अरुण-हिन्दी और अरुणाचल प्रदेश की भाषाई परिदृश्य

अरुणाचल प्रदेश, भारत के उत्तर-पूर्वी हिस्से में, अपनी सांस्कृतिक और भाषाई विविधता के लिए जाना जाता है । यहाँ 26 से अधिक प्रमुख जनजातियाँ और 256 उप-जनजातियाँ हैं, जो लगभग 30 से 90 तक की भाषाएँ और बोलियाँ बोलती हैं । इस विविधता के कारण, एक साझा संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की गई और हिन्दी इस भूमिका में उभरी है ।

'अरुण-हिन्दी' का उदय

'अरुण-हिन्दी' को अरुणाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की एक किस्म के रूप में समझा जा सकता है, जो खड़ी बोली हिन्दी से अंकुरित हुई है और स्थानीय भाषाओं के संपर्क में आने से विकसित हुई है । इसका उदय प्रशासनिक परिवर्तनों, भारतीय सेना की मौजूदगी और शिक्षा प्रणाली में हिन्दी के उपयोग के कारण हुआ है । यह विभिन्न भाषाई समूहों के बीच संवाद को सुगम बनाने के लिए एक संपर्क भाषा के रूप में कार्य करता है ।

विशेषताएं

'अरुण-हिन्दी' में स्थानीय भाषाओं के प्रभाव से ध्वन्यात्मक, शब्द संबंधी और व्याकरणिक परिवर्तन देखे जा सकते हैं । यह मानक हिन्दी से अलग हो सकता है, विशेष रूप से उच्चारण और शब्दावली में और एक सरलीकृत रूप में विकसित हुआ है जो विभिन्न वक्ताओं के लिए संवाद को आसान बनाता है ।

अरुणाचल प्रदेश, भारत के उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में स्थित, अपनी प्राकृतिक सुंदरता और सांस्कृतिक विविधता के लिए प्रसिद्ध है । यह राज्य अपनी भाषाई विविधता के लिए भी जाना जाता है, जिसमें 26 प्रमुख जनजातियाँ और 256 उप-जनजातियाँ शामिल हैं, जो लगभग 30 से 90 तक की भाषाएँ और बोलियाँ बोलती हैं । 2011 की जनगणना के अनुसार, मुख्य भाषाओं में न्यीशी (20.74%), अदि (17.35%), नेपाली (6.89%), और हिन्दी (3.45%) शामिल हैं ।

इस विविधता के कारण, एक साझा संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की गई और 'अरुण-हिन्दी' इस भूमिका में उभरी है, जो खड़ी बोली हिन्दी से अंकुरित हुई है और स्थानीय संदर्भ में विकसित हुई है ।

भाषाई विविधता और संपर्क भाषा की आवश्यकता

अरुणाचल प्रदेश में भाषाई विविधता का स्तर अत्यधिक है, जिसके कारण विभिन्न जनजातियों के बीच संवाद में कठिनाई होती है । उदाहरण के लिए, अदि भाषा का बोलने वाला नोक्टे भाषा को समझ नहीं पाता है । इस समस्या को हल करने के लिए, एक साझा भाषा की आवश्यकता थी, जो विभिन्न भाषाई समूहों के बीच संवाद को सुगम बनाए । इस संदर्भ में, हिन्दी, जो भारत की एक आधिकारिक भाषा है और व्यापक रूप से बोली जाती है, संपर्क भाषा के रूप में उभरी ।

विजय नगरकर

'अरुण-हिन्दी' का उदय

'अरुण-हिन्दी' को अरुणाचल प्रदेश में बोली जाने वाली हिन्दी की एक विशिष्ट किस्म के रूप में समझा जा सकता है, जो खड़ी बोली हिन्दी पर आधारित है, लेकिन स्थानीय भाषाओं और सांस्कृतिक संदर्भों के प्रभाव से विकसित हुई है । इसका उदय कई ऐतिहासिक और सामाजिक कारकों से प्रभावित हुआ है:

प्रशासनिक परिवर्तन:

भारत की स्वतंत्रता के बाद, अरुणाचल प्रदेश असम का हिस्सा था और बाद में 1972 में एक केंद्रशासित प्रदेश बना, जिसे 1987 में पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ । इस दौरान, शिक्षा में असमिया भाषा का उपयोग किया जाता था, लेकिन इसका विरोध हुआ । परिणामस्वरूप अंग्रेजी और हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में शुरू किया गया, जिससे हिन्दी का प्रसार हुआ ।

भारतीय सेना की भूमिका:

1962 के सीमा विवाद के दौरान भारतीय सेना की मौजूदगी ने हिन्दी के प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । सेना के जवान, जिनमें से कई हिन्दी बोलते थे, स्थानीय लोगों के साथ संवाद करते थे । सेना द्वारा स्थापित स्कूलों और अस्पतालों में हिन्दी का उपयोग किया जाता था, जिससे इसका प्रचार हुआ ।

स्थलांतर और शिक्षा:

अन्य राज्यों से हिन्दी बोलने वाले शिक्षकों और सरकारी कर्मचारियों का प्रवास अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी के प्रसार में योगदान देता रहा है । इसके अलावा, मीडिया, मनोरंजन और राजनीति में हिन्दी का उपयोग इसे संपर्क भाषा के रूप में मजबूत करता है । उदाहरण के लिए राज्य विधान सभा में बहस और स्कूलों में बच्चों के बीच संवाद में हिन्दी का उपयोग आम है ।

'अरुण-हिन्दी' की भाषाई विशेषताएँ

हालांकि 'अरुण-हिन्दी' के लिए विशिष्ट भाषावैज्ञानिक अध्ययन सीमित हैं, यह स्पष्ट है कि यह मानक हिन्दी से अलग है और स्थानीय भाषाओं के प्रभाव से विकसित हुई है । कुछ संभावित विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

ध्वन्यात्मक प्रभाव:

स्थानीय भाषाओं के ध्वनि प्रणाली के कारण 'अरुण-हिन्दी' में कुछ हिन्दी शब्दों का उच्चारण अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए स्थानीय बोलियों के टोन या स्वर प्रणाली हिन्दी के उच्चारण को प्रभावित कर सकती हैं।

शब्द संबंधी उधार:

इसमें स्थानीय भाषाओं से शब्दों का समावेश हो सकता है, विशेष रूप से उन अवधारणाओं के लिए जो क्षेत्रीय या सांस्कृतिक रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए स्थानीय फसलों, परंपराओं या भौगोलिक विशेषताओं के लिए शब्द स्थानीय भाषाओं से लिए जा सकते हैं।

व्याकरणिक सरलीकरण:

संपर्क भाषा के रूप में 'अरुण-हिन्दी' में व्याकरणिक संरचनाओं का सरलीकरण हो सकता है, जो विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमि के वक्ताओं के लिए संवाद को आसान बनाता है। यह पिजिन या क्रेओल भाषाओं की तरह हो सकता है, जहां जटिल नियमों को सरल बनाया जाता है।

विकिपीडिया के अनुसार, अरुणाचल प्रदेश की एक बड़ी और बढ़ती आबादी अब हिन्दी को मातृभाषा के रूप में बोलती है, जो एक अर्ध-क्रेओलित किस्म के रूप में विकसित हो रही है।

यह संकेत देता है कि 'अरुण-हिन्दी' न केवल एक संपर्क भाषा है, बल्कि स्थानीय लोगों के लिए एक दैनिक संवाद का माध्यम भी बन गया है।

उपयोग और प्रसार

'अरुण-हिन्दी' का उपयोग विभिन्न संदर्भों में देखा जा सकता है; जैसे:

1) शिक्षा: स्कूलों में हिन्दी को प्राथमिक शिक्षा का माध्यम बनाया गया है और कई शिक्षक अन्य राज्यों से हिन्दी बोलने वाले हैं, जो इसकी लोकप्रियता को बढ़ाते हैं।

2) प्रशासन: राज्य विधान सभा में बहस और सरकारी दस्तावेजों में हिन्दी का उपयोग आम है।

3) दैनिक जीवन: बाजारों, स्कूलों और सार्वजनिक स्थानों पर हिन्दी संवाद का मुख्य माध्यम है। उदाहरण के लिए, ऑटो/टैक्सी ड्राइवरों के साथ संवाद में हिन्दी का उपयोग किया जाता है।

2011 की जनगणना के अनुसार, हिन्दी बोलने वालों की संख्या 3.45% थी, लेकिन अनुमान है कि वास्तविक उपयोगकर्ताओं की संख्या 90% तक हो सकती है, जो इसकी व्यापक स्वीकृति को दर्शाता है।

स्थानीय भाषाओं पर प्रभाव

हिन्दी का प्रभुत्व संपर्क भाषा के रूप में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रभाव डालता है। एक ओर यह विभिन्न समुदायों के बीच संवाद और एकीकरण को सुगम बनाता है, लेकिन दूसरी ओर, यह स्थानीय भाषाओं के अस्तित्व और उपयोग पर खतरा बन सकता है। 2010 के एक सर्वेक्षण के अनुसार अरुणाचल प्रदेश में लगभग 90 स्थानीय भाषाएँ हैं और 2017 के यूनेस्को सर्वेक्षण के अनुसार 33 भाषाएँ संकट में हैं, जिनमें से 4 विलुप्त होने की कगार पर हैं।

हाल के वर्षों में अदि, नोक्टे, अपातानी और न्यीशी जैसे प्रमुख जनजातीय भाषाओं के संरक्षण और प्रलेखन के प्रयास किए जा रहे हैं। हालांकि, हिन्दी का व्यापक उपयोग विशेष रूप से शिक्षा और प्रशासन में युवा पीढ़ी में स्थानीय भाषाओं के उपयोग को कम कर सकता है।

निष्कर्ष

'अरुण-हिन्दी', जो खड़ी बोली हिन्दी से अंकुरित हुई है, अरुणाचल प्रदेश में संपर्क भाषा के रूप में स्थापित हुई है। इसका उदय भाषाई विविधता, प्रशासनिक परिवर्तनों, और सामाजिक कारकों के कारण हुआ है। यह विभिन्न समुदायों के बीच संवाद को सुगम बनाता है, लेकिन स्थानीय भाषाओं के संरक्षण के लिए संतुलित भाषा नीतियों की आवश्यकता को भी उजागर करता है। भविष्य में 'अरुण-हिन्दी' की भूमिका केंद्रीय रहेगी, लेकिन स्थानीय भाषाओं की समृद्ध परम्पराओं को बनाए रखना भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है।

-विजय नगरकर
अहिल्यानगर (महाराष्ट्र)

हिन्दी मात्र एक भाषा ही नहीं है अपितु एक संस्कृति है, संस्कार है। देश-दुनिया की प्रगति और सभ्याचार में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

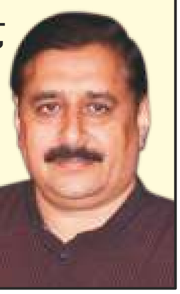

सुधाकर पाठक
अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

अरुणाचल प्रदेश के आदी जनजातीय लोकगीतों में प्रकृति चित्रण

मनुष्य एवं प्रकृति का संबंध जन्म-जन्मांतर का होता है। प्रकृति से ही संसार के सारे प्राणियों का जन्म हुआ। प्रत्येक ऋतु में खुद को ढालना मनुष्य को आता है। अलग-अलग ऋतुओं के साथ मनुष्य की भिन्न-भिन्न संवेदनाएँ जुड़ी हुई हैं। बदलते ऋतुओं के साथ अलग-अलग धुनों पर विभिन्न प्रकार के गीत होंठों पर अनायास ही आ जाते है। अरुणाचल प्रदेश के आदी जनजातीय समाज में भी प्रकृति से जुड़े अनेक लोकगीत पाए जाते हैं। इन लोकगीतों में विभिन्न ऋतुओं एवं उनसे जुड़े प्रकृति के विभिन्न उपादानों का उल्लेख मिलता है। ये ऋतुएँ इनके गीतों की आत्मा है। विभिन्न ऋतुओं में उनसे जुड़े तरह-तरह के गीत गाए जाने की परंपरा आदी जनजातीय समाज में सदियों से चली आ रही है। वर्षा ऋतु से संबंधित एक आदी लोकगीत बहुत ही सुंदर बन पड़ा है-

लोबो दोदिङ,
रोगो पित्चाप पिल्लाप,
एमे देम मुतकितो दोरमाङ ।

भावार्थ: इस गीत का भाव यह है कि बरसात का महिना अत्यधिक तकलीफदेह होता है। बरसात के महीने में जोरदार बारिश होती हैं। मुर्गी के चूजे भी रो रहें हैं और बार-बार फूँक मारने के बावजूद आग रह-रहकर बूझ जाती है।

बारिश के दिनों में जब मूसलाधार वर्षा होती है, तो मनुष्य को अत्यधिक कष्टों का सामना करना पड़ता है। साथ ही सभी पशु-पक्षियों को भी मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में मुर्गियों के चूजें भी इधर-उधर पीं-पीं की आवाज करते हुए खड़े होने के लिए सुरक्षित स्थान ढूँढ़ते हुए दिखाई पड़ते हैं। जलाने के लिए जो लकड़ियाँ हैं वे भी अत्यधिक वर्षा के कारण पूरी तरह भीग गई हैं और फूँक-फूँककर जलाने के प्रयास में भी रह-रहकर फिर बूझ जाती हैं।

आदी जनजातीय लोगों का निवास स्थल अरुणाचल प्रदेश के मध्य भाग में है। जिसका आधा हिस्सा पहाड़ों में है तो आधा हिस्सा मैदानी इलाकों में पड़ता है। यह मैदानी इलाका असम राज्य से सटा हुआ है। पहाड़ी इलाकों में साल भर ठंड रहती है परंतु जो मैदानी इलाका है, वहाँ ग्रीष्म ऋतु में बहुत गर्मी रहती है। ग्रीष्म ऋतु में बढ़ते तापमान पर एक आदी लोकगीत है, जो स्त्रियों द्वारा गायी जाती है-

आमोङ सी दामा ए,
तालेङ ते दाकोनी ए,
तानी ङोलुम बाजी बोमदूङ ।

भावार्थ : इस गीत के माध्यम से स्त्रियाँ गाते हुए कह रही हैं कि गर्मी इतनी अधिक बढ़ गई है कि मानो यह धरती कढ़ाही बन गई है। आसमान इसका ढक्कन बन गया है और हम इंसान इसमें तले जा रहे हैं।

प्राकृतिक छटा से परिपूर्ण अरुणाचल प्रदेश बहुत ही सुंदर राज्य है। नदी-झरने, जंगल-पहाड़, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि से भरपुर यह प्रदेश पावन और मनोरम दृश्य से भरा हुआ है। ऐसे में यहाँ रहने वाले लोगों का प्रकृति के साथ जो तादात्म्य हैं, वह अद्वितीय है। यहाँ के लोग प्रकृति को पूजते हैं।

अरुणाचल प्रदेश के आदी जनजातीय समाज में भी प्रकृति का बहुत बड़ा महत्त्व है। वे प्रकृति से तारतम्य बनाकर चलते हैं। प्रकृति के प्रत्येक परिवर्तन के साथ उनकी जिंदगी में भी परिवर्तन आता हैं। उनका जीवन प्रकृति पर ही निर्भर हैं। प्रकृति से इन्हें प्रेम हैं और इसी कारण ये प्रकृति का संरक्षण भी करना जानते हैं। वे प्रकृति से अपनी आवश्यकता भर की चीजें ही लेते हैं। आदी जनजातीय प्रकृति गीतों में प्रकृति से जुड़े तमाम उपादानों जैसे- नदी, पहाड़, पक्षी, मछली, पेड़, फूल का उल्लेख मिलता है। आदी जनजाति के लोग प्रकृति से प्रेम करते हैं। प्रकृति की मनमोहकता इन्हें आकर्षित करती है। एक आदी लोकगीत में पहाड़ से नीचे की ओर बहती हुई झरने का बहुत ही सुंदर वर्णन किया गया है। जिसमें कहा जा रहा है कि अति सुंदर झरना, पहाड़ों के ऊँचे शिखरों से नीचे की ओर प्रवाहित हो रही है-

दिंगो आसी दिंगो,
दिदुम ए तेलोक काई ओईने ।

अरुणाचल प्रदेश एक प्राकृतिक उपादानों से भरा-पूरा प्रदेश है। यहाँ के लोगों का प्रकृति के साथ आत्मीयता का सम्बंध है। इसी कारण बदलते ऋतुओं की पहचान ये लोग पशु-पक्षियों की आवाज़, पेड़-पौधों के पत्ते, फूल, कीड़े-मकोड़ों की आवाज आदि से कर लेते है। एक आदी लोकगीत है जिसमें 'तांगको ञोने' नामक पक्षी पतझड़ और सर्दी के मौसम के आगमन की सूचना दे रहे हैं-

गे तांगको ञोने .... गे तांगको ञोने
ङो लितुंग बोपिए ओमे सी .... गे तांगको ञोने
ङो लिमाङ बोपीए ओमे सी .... गे तांगको ञोने
ङो लितुंग तुङगोने ञोने .... गे तांगको ञोने
ङो लिमाङ माङकोङे ञोने .... गे तांगको ञोने
गे तांगको ञोने .... गे तांगको ञोने
ङो लितुंग यारूङे तेलोना .... गे तांगको ञोने
ङो लिमाङ रूआङे तेलोना .... गे तांगको ञोने
गे यिङकोङे तेलोना .... गे तांगको ञोने
ङो मीमेके एन्यीने .... गे तांगको ञोने
गे एन्योने बीनासी .... गे तांगको ञोने
गे तांगको ञोने एन्यीने .... गे तांगको ञोने
गे एन्योने गेनासी .... गे तांगको ञोने।

भावार्थ: प्रस्तुत 'तांगको ञोने' नामक लोकगीत आदी जनजातीय समाज का बहुत ही लोकप्रिय गीत है। इस गीत में तांगको ञोने नामक पक्षी कह रही है कि मैं लितुङ-लिमाङ संसार से आई हूँ। मैं लितुङ-लिमाङ धरती की बेटी हूँ। मैं ही धरती की पहली नर्तकी हूँ। मेरे आगमन के साथ ही ठंड का मौसम आ जाता है।

युवतियों का समूह इस गीत को गाते हुए नृत्य करता है। यह गीत 'तांगको ञोने' नामक पक्षी पर आधारित है, जिसका आगमन शरद ऋतु एवं शिशिर ऋतु में होता है। अर्थात् जब धरती पूरी तरह सूख जाती है, पेड़-पौधे सूख जाते हैं, तब तांगको ञोने नामक पक्षी आकाश में दिखाई देता है। आदी जनजाति के लोगों का मानना है कि यह पक्षी एक संदेशवाहक के रूप में आती है। उनका आगमन इस बात का सूचक है कि पतझड़ एवं सर्दी का मौसम आ गया है। तांगको ञोने खुद को लितुङ-लिमाङ की बेटी बताती है, जो मनुष्य के पूर्वज रह चुके हैं। इसलिए मनुष्य जाति तांगको ञोने का अनुसरण करते हुए त्योहारों में नृत्य किया करते हैं।

सृष्टि के निर्माण के समय से ही मनुष्य और प्रकृति का अद्भुत रिश्ता रहा है। सृष्टि को संतुलित रखने के लिए मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी एवं पेड़-पौधों का भी बहुत बड़ा योगदान है। तांगको ञोने अपनी इसी महत्ता को इस लोकगीत के माध्यम से हमारे समक्ष प्रस्तुत कर रही है।

प्रकृति के एक और गीत में आदी जनजाति के निवास क्षेत्र से प्रवाहित होने वाली नदियों एवं झरनों में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार के मछलियों का भी उल्लेख मिलता है, जो इस प्रकार है-

एङो गारयोले मामाङ .... एङो गारयोले मामाङ
ङोने मेलाम देलो .... ङोने मेलाम देलो
ङोक्यु क्युमिन गेकाय .... ङोक्यु क्युमिन गेकाय
ङोक्यु मेलाम देलो .... ङोक्यु मेलाम देलो
रूल्बुंग बुमिन गेकाय .... रूल्बुंग बुमिन गेकाय
रूल्बुंग मेलाम देलो .... रूल्बुंग मेलाम देलो

भावार्थ: स्वच्छ शीतल जल में मछलियाँ नृत्य कर रही हैं। एक के पीछे एक कतार में नदियों के प्रवाह के साथ तैर रही हैं। ङोने मछली के पीछे ङोक्यु मछली जा रही है। ङोक्यु मछली के पीछे रूल्बुंग मछली जा रही है। इस प्रकार तरह-तरह की मछलियाँ एक के पीछे एक जा रही हैं, जो देखने में बहुत ही सुंदर प्रतीत हो रही हैं।

प्रस्तुत आदी लोकगीत में मछलियों का वर्णन किया गया है। आदी निवास क्षेत्र में अनेक नदियाँ कलकल-छलछल के उद्गम वेग से प्रवाहित होती हैं। इन नदियों में विभिन्न प्रकार की छोटी-बड़ी मछलियाँ पाई जाती हैं। इन मछलियों के बारे में बहुत कुछ जानकारी इस लोकगीत के माध्यम से मिल जाती है। मछलियाँ प्रकृति के चक्र को पूरा करने वाली एक अंग होती हैं। जल में मछलियों को नृत्य करते हुए देखना स्वच्छ जल का द्योतक है। यह तभी संभव है जब प्रकृति और पर्यावरण प्रदूषण रहित हो। आदी समाज में प्रकृति के प्रति संवेदना का भाव रहा है। इसलिए आदी जनजाति के लोग प्रकृति को प्रदूषित करना पाप समझते हैं। वे प्रकृति से कुछ लेते भी हैं तो सीमित मात्र में।

वर्तमान में आधुनिकीकरण के कारण नदियों एवं झरनों में गंदगी फैल गई है। कई प्रकार के आधुनिक दवाइयों एवं उपकरणों का प्रयोग मछली पकड़ने हेतु किया जा रहा है। जिसके कारण मछलियों के रूप में जल संपदा को हानि पहुँची है और विभिन्न प्रजातियों की मछलियों की संख्या कम हुई है। आदी जनजातीय समाज में प्रकृति का बहुत महत्त्व है। प्रकृति के प्रति यही प्रेम भाव इनके लोकगीतों में भी दृष्टिगोचर होता है जो आज भी आदी जनजाति के लोगों को प्रकृति के करीब लाती हैं, उन्हें प्रकृति से जोड़ती है। यह लोकगीत जीवन का पाठ पढ़ाते हैं, जिसमें विशेष रूप से यह सीख दी जाती है कि प्रकृति से विलग होकर मनुष्य का कोई अस्तित्व नहीं।

-डॉ. बनश्री पर्तिन
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, पासीघाट
ईस्ट सियांग, अरुणाचल प्रदेश-791102

अरुणाचल प्रदेश के न्यीशी समुदाय का सामान्य परिचय

भारत के पूर्वोत्तर आठ राज्यों में से एक राज्य अरुणाचल प्रदेश है। इसमें कुल अट्ठाईस जिले हैं और सौ से अधिक जनजातीय समुदायों का निवास स्थल है। आदी, आपातानी, गालो, न्यीशी और तागिन जैसे प्रमुख समुदाय तानी वंश के अंतर्गत आते हैं। ये सभी 'आबो तानी' अर्थात पिता तानी को अपना पूर्वज मानते हैं। इसके अतिरिक्त मोनपा, शेरदुकपेन, मीजी, आका, खोवा, मिशमी, खामती, सिंगफो, तांगसा, नोक्ते, वान्चू आदि समुदाय भी उल्लेखनीय हैं।

इन समुदायों की अपनी-अपनी भाषा, बोली, खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, पर्व-त्योहार और धर्म-आस्था आदि हैं। विविधता से परिपूर्ण यह प्रांत भारत में एक विशिष्ट और समृद्ध सांस्कृतिक स्थान रखता है। न्यीशी की अपनी सांस्कृतिक पहचान है। भाषिक संरचना एवं लोक साहित्य की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। जनसंख्या की दृष्टि से भी न्यीशी समुदाय अरुणाचल प्रदेश में सबसे बड़ा है। ये मुख्यत: पूर्वी कामेंग, पाक्के केस्संग, पापुम पारे, कइअ पान्योर, कुरूङ कुमे, करा दादी, कामले और लेपारादा आदि जिलों में निवास करते हैं। इन्हें मंगोलियाई नस्ल से संबंधित माना जाता है और इनकी भाषा तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार से संबंधित हैं। ये लोग प्रकृति और अपने पूर्वजों - दोनों में आस्था रखते हैं। विभिन्न जिलों में बसे न्यीशी लोगों के शब्दों, लहजों और उच्चारण में थोड़ी भिन्नता देखने को मिलती है, किन्तु भाव पक्ष समान रहता है। कभी-कभी अर्थ की स्पष्टता में बाधा उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए, 'खाना' शब्द के लिए 'अपीङ', 'अचीन', 'दुगु', 'दगम' आदि शब्दों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार, 'चमड़ों' के लिए 'अपीङ' और 'सोपीङ' जैसे शब्द प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार उच्चारण में थोड़ा अंतर के कारण कभी-कभी संप्रेषण में अस्पष्टता उत्पन्न हो जाती है।

'न्यीशी' शब्द की उत्पत्ति को लेकर डॉ. नाबाम नाका हीना लिखते हैं, "न्यीशी शब्द की उत्पत्ति मूलत: तीन शब्दों- ता+न्यी+शी के संयोजन से हुई है। 'तान्यी' का तात्पर्य 'आबो तान्यी', 'न्यी' का अर्थ है व्यक्ति अथवा मानव जाति, जिनकी उत्पत्ति पिता 'नीया तानी' से मानी जाती है, जिन्हें धरती का पहला मानव पुत्र माना जाता है। 'शी' का अर्थ 'हैं' से है। इस व्युत्पत्ति के पीछे तर्क यह है कि- 'तानी गे न्यी ङे शी' या 'शी तानी गे न्यी ङे'- जिनका अर्थ है : "यह तानी के वंशज हैं" या "इनकी उत्पत्ति तानी से हुई है"।1 इस प्रकार 'न्यीशी' शब्द, 'तानी' वंशजों की पहचान को दर्शाता है।

शब्द निर्माण की प्रक्रिया में मूल शब्द के साथ प्रत्यय जोड़कर नए शब्द बनाए जाते हैं। जैसे हिन्दी में 'मान' से स्वाभिमान, अभिमान आदि शब्दों की रचना होती है। वैसे ही न्यीशी भाषा में भी 'नाम' प्रत्यय जोड़कर नए शब्द बनाए जाते हैं। उदाहरणस्वरूप- नाम प्रत्यय जोड़कर 'कागबनाम' (पहचान कर रखना), 'हिङगबनाम' (संभाल कर रखना), 'मअगबनाम' (याद रखना) आदि शब्द बनाए जाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि 'तानी' अथवा 'तान्यी' शब्द की अंतिम ध्वनि 'नी' अथवा 'न्यी' से 'न्यी' शब्द की उत्पत्ति हुई है और इसी 'न्यी' में 'शी' प्रत्यय जोड़कर 'न्यी'+'शी' = 'न्यीशी' शब्द की रचना हुई। इसका अर्थ होगा- 'तानी के वंशज हैं' या 'तानी के पुत्र हैं'।

गृह संबंधी: न्यीशी घरों का निर्माण जमीन से कुछ फीट ऊपर किया जाता है। इसमें बांस, लकड़ी, पत्ते और रस्सी आदि का प्रयोग होता है। घर को मजबूत खंभों के सहारे खड़ा किया जाता है। घर का आकार परिवार के सदस्यों की संख्या पर निर्भर करता है। संयुक्त परिवार होने पर घर का आकार बड़ा होता है। ऐसे घरों में बीस-पच्चीस से अधिक चूल्हे बनाए जाते हैं। प्रत्येक चूल्हा एक-एक परिवार का प्रतीक होता है। घर की दीवारें बांस से बनाई जाती हैं। छप्पर बनाने के लिए 'कुलुङ कपा' (जंगली केले के पत्ते), 'तोको ओको' (तोको पेड़ के पत्ते) और 'तराक ओको' (बेंत के पत्ते), आदि का उपयोग किया जाता है।

'मारम' (चूल्हा) के ऊपर तीन परतें बनाई जाती हैं- 'राबके', 'बदङ' और 'नाका'। राबके में मांस, मछली, धान, कोदो आदि को सुखाया जाता है। बदङ में आवश्यक वस्तुएँ रखी जाती हैं। नाका घर की भीतरी छत होती है, जिसमें औजार, सीढ़ी, चटाई आदि रखे जाते हैं। घर में दो प्रमुख द्वार होते हैं ।

'बागो राबगो': सूर्योदय की दिशा में बना द्वार। **'बातुङ राबगो':** सूर्यास्त की दिशा में बना द्वार। घर के निचले हिस्से में लकड़ी आदि वस्तुओं को रखा जाता है।

हस्तकला संबंधी: हस्तकला से संबंधित वस्तुओं का प्रयोग घर में किया जाता है। इनमें चम्मच, मग, पात्र, बरतन, चटाई, टोकरी, कंघी, ओखली, कुल्हाड़ी, कुदाल, फावड़ा आदि आते हैं। शिकार में प्रयुक्त हथियारों में तीर, धनुष, फंदा, जाल, भाला, दाव आदि शामिल होते हैं। आभूषणों के निर्माण में भी इनकी कलात्मकता स्पष्ट दिखाई देती है। पहने जाने वाले हस्तनिर्मित आभूषणों में-

'पअना कोजी' (कंगन), 'हुही' (कमरबंद), 'दुम्पीन' (सिर का आभूषण), 'रूङबीन' (कर्णफूल) प्रमुख हैं। ये लोग कढ़ाई और बुनाई जैसी कलाओं में भी निपुण होते हैं। हस्तनिर्मित सभी वस्तुओं में बांस, लकड़ी, बेंत और रस्सी का उपयोग किया जाता है।

खान-पान संबंधी: मांस, मछली और चावल इनका प्रमुख भोजन है। इनके भोजन में सादगी होती है और ये उबालकर, भूनकर और सूखाकर खाना पसंद करते हैं। तैलीय खाद्य पदार्थों से परहेज करते हैं। ये लोग जंगली फल, सब्जियाँ आदि का भी सेवन करते हैं। इनके भोजन में धान, मक्का, खीरा, कद्दू, मिर्च, अदरक, कोदो, आलू, अरबी आदि शामिल होते हैं। जुन-जुलाई महीनों में नए बांस निकलने लगते हैं, जिनसे कई प्रकार के पारम्परिक व्यंजन बनाए जाते हैं।

खेती बाड़ी और पशु पालन: न्यीशी समाज एक कृषि प्रधान समाज है। ये लोग मुख्यत: झूम खेती और पानी खेती करते हैं। मार्च-अप्रैल के महीनों में झूम खेती की जाती है। इसके अंतर्गत जंगलों को काटकर, सुखने के बाद आग लगा दी जाती है। इसके बाद धान, मक्का, कद्दू, खीरा, मिर्च आदि की खेती की जाती है। मई, जून और जुलाई के महीनों में पानी वाले खेतों में हल चलाकर धान रोपा जाता है। इसके अतिरिक्त ये लोग अनानास, केला, पपीता, आम, लीची, ईक, अमरूद, संतरा, कीवी, इलायची, ईक, पिताया आदि की भी खेती करते हैं।

पालतू पशुओं में ये लोग मिथुन, गाय, बकरी, सुअर, मुर्गी आदि का पालन करते हैं। मिथुन इनका प्रिय पशु होता है और इसका मूल्य सबसे अधिक माना जाता है। इन पशुओं से इनका जीवन निर्वाह होता है, इसलिए इन पशुओं का पालन इनकी संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। यह केवल आजीविका का साधन भर नहीं है बल्कि विवाह, पर्व-त्योहार तथा विभिन्न कर्मकाण्डों की पूर्ति के लिए पशुओं की बलि दी जाती है।

आखेट संबंधी: सामूहिक रूप से शिकार करना इस समाज की पारम्परिक प्रथा रही है। गाँव के सभी लोग मिलकर जंगल में शिकार करते हैं और बांध बनाकर सामूहिक रूप से मछली पकड़ते हैं। मछली पकड़ने की विविध शैलियाँ पाई जाती हैं, जिसमें विषैली जड़ों और तनों का उपयोग कर मछलियों को बेहोश किया जाता है। ये लोग तीर, धनुष, फंदा, जाल आदि के प्रयोग में दक्ष होते हैं। छोटे आकार के पशुओं को पकड़ने के लिए 'मारङ' (बांस से बना छोटे आकार का फंदा) का प्रयोग किया जाता है और बड़े आकार के पशुओं को 'कमा' (लकड़ी एवं बांस से बना बड़े आकार का फंदा) का। पत्थरों से बनाए गए फंदे को 'ताकम आदा' कहा जाता है। इसके अलावा पेड़ों की पत्तियों और डालियों में 'ताचोर' (प्राकृतिक गोंद) लगाकर चिड़ियों का शिकार किया जाता है। जिसे 'ताचोर हनम' कहा जाता है।

वेशभूषा संबंधी: न्यीशी महिलाएँ विशेष प्रकार के पारम्परिक वस्त्र धारण करती हैं। 'पोमो' (काले एवं सफेद धागों से बुना), 'पारी' (शुद्ध श्वेत सूती से बुना) और 'गाले' (विभिन्न रंगों के धागों से बुना) आदि सभी परिधान पहले हाथ से बुने जाते थे, लेकिन अब इन्हें मशीन से अधिकांश तैयार किया जाता है। पारी का विशेष महत्त्व पारम्परिक विवाह, कर्मकाण्ड और पर्व-त्योहारों में होता है। पारम्परिक विवाह प्रथा में पारी का आदान-प्रदान विशेष रूप से किया जाता है, और इसका सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से उच्च मूल्य होता है। पारी को स्त्रियाँ दाएँ कंधे की ओर से बांधकर कमर में लपेटकर पहनती हैं। गाले को कमर में लपेटकर धारण किया जाता है, जिसकी लम्बाई घुटनों के नीचे तक जाती है। पोमो को गाले और पारी के समानंतर पहना जाता है। आभूषणों में 'पअना कोजी' (कंगन), 'हुही' (कमरबंद), 'दुम्पीन' (सिर का आभूषण), 'रूङबीन' (कर्णफूल) आदि धारण करती हैं। भिन्न-भिन्न रंगों की 'तासंग' (मालाएँ) पहनती हैं, जिसमें दोहले, सङतर, सङपी, बङकिया आदि के साथ 'मुन्यी' अर्थात् रंग-बिरंगे दानों वाली मालाएँ भी शामिल होती हैं।

पुरुष अपने केशों को घुमाकर सिलवर रंग की डंडी की सहायता से मस्तक पर जुड़ा बाँधते हैं। वे बेंत से बनी 'बोपीया' (टोपी) धारण करते हैं, जिसमें धनेश पक्षी के चोंच (वर्तमान में सरकारी हस्तक्षेप के कारण इसकी जगह काठ से बनी चोंच का उपयोग किया जाता है) लगाया जाता है, 'निन गलअ' (निन पक्षी के पर) लगाया जाता है। पारी को दोनों कंधों पर बांधकर अथवा उसके दोनों छोरों को कंधों के आगे की ओर छोड़कर पहना जाता है। इसकी लम्बाई कमर तक होती है। पुरुष अपने साथ 'नारा' (बेंत से बना थैला), 'गेची' (छोटा चाकू), 'चेगे' (दाव) आदि वस्तुएँ धारण करते हैं। तादो, दोहले, चुङरे, आदि मालाएँ पुरुष धारण करते हैं। स्त्री और पुरुषों के लिए आभूषण और मालाएँ भिन्न-भिन्न होते हैं।

विवाह संबंधी: विवाह संबंधी परम्परा को 'न्यीदा' कहा जाता है, जिसमें पारम्परिक विवाह के तीन स्तर पाए जाते हैं- 'दाची न्येदा', 'माजो न्येदा' और 'दाते न्यीदा'। दाची न्येदा का प्रचलन सामान्य परिवारों में होता है, माजो न्येदा मध्यवर्गीय परिवारों में, और दाते न्येदा सम्पन्न परिवार में।

सामान्य एवं मध्यमवर्गीय परिवारों में की जाने वाली विवाह रस्मों में अधिक अंतर नहीं होता है। इनमें मिथुन की संख्या पाँच से दस तक की हो सकती है, वहीं आभूषण एवं मालाओं की संख्या भी सीमित होती है। इसके विपरीत दाते न्यीदा अर्थात् भव्य विवाह में बड़ी संख्या में मिथुन, आभूषण और मालाओं का आदान–प्रदान होता है। श्री टी.टी तारा के अनुसार, "जले विवाह एक प्रकार का भव्य विवाह होता है, जिसमें वर और वधू, दोनों पक्षों के बीच बड़ी संख्या में मिथुन तथा अन्य वस्तुओं का लेन–देन होता है। इस प्रक्रिया को दोनों पक्षों के बीच वस्तु–विनियम भी कहा जा सकता है।"2 पारम्परिक विवाह को सम्पन्न करने के लिए अधिक समय लगता है। इसमें काफी मेहनत करनी पड़ती है। वर पक्ष को कई बार वधू के घर मांस, मछली और मिथुन आदि लाने पड़ते हैं, वहीं वधू पक्ष को आभूषण, माला आदि देने पड़ते हैं। इस विवाह प्रक्रिया के कई चरण होते हैं, जिन्हें चरणबद्ध तरीके से निभाया जाता है।

पूर्व में बाल विवाह, अनमेल विवाह तथा बलात विवाह जैसी प्रथाएँ प्रचलित थीं, किन्तु समय के साथ लोगों में शिक्षा के माध्यम से जागरूकता आई है। अब इन प्रथाओं का प्रचलन लगभग समाप्त हो गया है। बहुविवाह की प्रथा अब भी कुछ लोगों में देखने को मिलती है, किन्तु पहले यह आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने का एक माध्यम हुआ करती थी। वर्तमान में कुछ लोग इसे केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति का साधन मात्र बनाकर रखे हुए हैं। डॉ. धर्मराज सिंह लिखते हैं, "इस समाज में बहुपत्नी प्रथा का प्रचलन है। किसी आदमी के पास जितनी अधिक पत्नियाँ होती हैं, वह आदमी सामाजिक दृष्टि से उतना ही सम्मानित तथा वैभवशाली माना जाता है।"3

न्याय व्यवस्था संबंधी: न्याय व्यवस्था को 'न्यीले' कहा जाता है। जो एक पारम्परिक ग्राम परिषद् होती है। यह सामाजिक न्याय की एक प्राचीन प्रणाली है। इसके प्रधान सदस्य को 'न्यागम आब' कहा जाता है। ये पौराणिक संदर्भों के ज्ञाता होते हैं और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। श्री माता प्रसाद के अनुसार, "गाँव बूढ़ा और प्रधान अपने क्षेत्र की शांति व्यवस्था कायम रखने के लिए जिम्मेदार होते हैं। गाँव बूढ़ा कौंसिल की अध्यक्षता करता है और अपना निर्णय देता है। यह निर्णय आम सहमति पर आधारित होता है।"4

'यालुङ' अर्थात् विवाद का समाधान 'न्यीले लापांग' (जो कि समाधान के लिए निर्धारित एक सार्वजनिक स्थल होता है) पर किया जाता है। यदि यालुङ सामान्य होता है, तो उसे घर के भीतर चूल्हे के आस–पास बैठकर सुलझाया जाता है। किन्तु गम्भीर या सार्वजनिक प्रकृति का होता है, तो उसका समाधान न्यीले लापांग में सामूहिक रूप से किया जाता है। अपराध की प्रकृति के अनुसार जुर्माना लगाया जाता है और आवश्यक्तानुसार दण्ड दिया जाता है। हत्या जैसे गंभीर अपराधों की स्थिति में शरीर के विभिन्न अंगों के लिए जुर्माने का निर्धारण किया जाता है, जिसमें अधिक संख्या में मिथुन, माजी, आभूषण, माला आदि शामिल होते हैं। आरोपी की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए निर्णय सुनाया जाता है। निर्णय के समय निर्णायक को मदिरा और अन्य नशीले पदार्थों से दूर रहना अनिवार्य होता है, ताकि निर्णय निष्पक्ष और शुद्ध रूप से लिया जा सके। न्यागम आब के निर्णयों का उल्लंघन करने पर व्यक्ति का जीवन सामान्य रूप से कष्टदायक हो जाता है, क्योंकि समाज उससे दूरी बना लेता है। किसी भी समस्या का समाधान न्यीले में खोजा जाता है। यही कारण है कि आधुनिक कोर्ट–कचहरी और पुलिस व्यवस्था होते हुए भी न्यीले की प्रासंगिकता और महत्त्व बना हुआ है। लोग अब भी इसकी न्यायिक पद्धति पर विश्वास रखते हैं।

पर्व-त्योहार संबंधी: न्यीशी समाज प्रकृति पूजक है। सूर्य और चंद्रमा इसके आराध्य देव–देवि माने जाते हैं। यह समाज अपने पूर्वजों के प्रति भी गहरी आस्था और श्रद्धा प्रकट करता है। न्यीशी विश्वास के अनुसार पूर्वजों की आत्माएँ ऋतु पक्षियों का रूप लेकर आती हैं और श्रम करने की सूचना देती हैं। वे संकेत देती हैं कि अब धान, मक्का, कद्दू और अदरक बोने का समय आ गया है। यह समाज मुख्यत: कृषि पर निर्भर है, इसलिए इसके अधिकांश पर्व–त्योहार कृषि से जुड़े होते हैं। 'न्योकुम यूल्लो', 'लोङते यूल्लो' और 'बूरी बूत युल्लो' न्यीशी समाज के प्रमुख पर्व–त्योहार हैं। इन अवसरों पर खेतों में अच्छी फसल होने, फसलों को कीड़े–मकोड़े से बचाना, अकाल, महामारी और रोग से रक्षा, प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा, असामयिक मृत्यु से बचाव, समस्त मानव जाति के कल्याण के लिए मंगलकामनाएँ की जाती हैं। इस दिन स्त्री–पुरुष, बच्चे और बुजुर्ग सभी पारम्परिक वेश–भूषा धारण कर उत्सव में बड़े हर्षोल्लाष के साथ भाग लेते हैं। 'युगुङ' अर्थात वेदी के चारों ओर घेरा बनाकर 'बूया' अर्थात् पारम्परिक सामूहिक नृत्य किया जाता है। इस अवसर पर मिथुन की बलि दी जाती है, और सामूहिक रूप से पारम्परिक भोज किया जाता है। 'ओपो' (कोदो से बना मदिरा) पीते हैं और 'अतङ' (चावल से पीसे आटा) को एक दूसरे के गालो में लगाते हैं। लोङते यूल्लो अप्रैल महिने में मनाया जाता है। इसकी एक खास बात यह है कि इसमें बलि नहीं होती है। बलि वेदी अवश्य बनाया जाता है।

शेष पृष्ठ संख्या 15 पर

मणिपुर में नेपाली नाट्य-परम्परा और प्रवृत्ति

डॉ. गोमा देवी शर्मा

भूमिका

नेपाली भाषा भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान प्राप्त भारतीय भाषाओं में से एक है। भारत नेपाली भाषा एवं साहित्य का एक प्रमुख केंद्र है। भारत में पश्चिम बंगाल, सिक्किम के साथ पूर्वोत्तर भारत के अन्य सात राज्य, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश जैसे राज्यों में बड़ी संख्या में नेपाली भाषी अपना जीवन यापन करते हैं। लिखित रूप में भारतीय नेपाली साहित्य का प्रारंभ सन् 1744 में कहलुर, हिमाचल प्रदेश निवासी रघुनाथ भाट रचित 'आशीष' शीर्षक काव्य रचना से माना जाता है। पूर्वोत्तर भारत में नेपाली साहित्य को प्रारंभ करने का श्रेय मणिपुर राज्य को जाता है। सन् 1893 में तुलाचन आले द्वारा रचित मणिपुरको लड़ाइको सवाई यथा प्राप्त पूर्वोत्तर भारत की पहली लिखित साहित्यिक रचना है। इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए आज दर्जनों रचनाकार विविध विधाओं के माध्यम से मणिपुर में नेपाली साहित्य का स्वरूप गढ़ने में अपना योगदान दे रहे हैं।

भारतीय स्वतंत्रता से पूर्व ही मणिपुर की भूमि में नेपाली नाटक रचना परंपरा का सूत्रपात हो चुका था। प्रारंभ में धार्मिक विषयों पर आधारित नाटकों का प्रचलन रहा। मणिपुर में नेपाली नाटक का सूत्रपात 1942 में होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। प्रारंभिक नाटकों की रचना केवल मनोरंजन के उद्देश्य से की जाती थी। मणिपुर में बड़ा दशैं (दुर्गा पूजा) और तिहार (दिवाली) के अवसर पर नाटक लिखने और मंचन की परंपरा लंबे समय तक चलती हुई दिखाई देती है। आज भी ग्रामीण स्तर पर यह परंपरा जीवित है। विपुल मात्रा में नेपाली नाटकों की रचना एवं मंचन होने के बावजूद भी इन्हें पुस्तकाकार रूप देने में रचनाकारों एवं साहित्यिक संस्थाओं ने कोई जागरूकता नहीं दिखाई। यह खेद की बात है।

मणिपुर में नेपाली नाटक को आगे बढ़ाने का काम पत्रकार, कवि, गीतकार और नाटककार कमल थापा 'प्रकाश' ने किया है। इस क्षेत्र में उनका अविस्मरणीय योगदान रहा है। उन्होंने लगभग एक दर्जन नाटकों का प्रणयन करके मणिपुर में नेपाली नाटक परंपरा को एक ठोस धरातल प्रदान किया है।

किसी भी स्थान विशेष पर भाषा-साहित्य के व्यवहार के पीछे किसी भाषा-भाषी विशेष के समाज के अस्तित्व का होना अनिवार्य होता है। मणिपुर में नेपाली भाषी गोर्खा समाज के उदय के पीछे कई ऐतिहासिक कारण रहे हैं। इसका एक कारण असम राइफल्स और आज़ाद हिंद फौज है। सेना में कार्यरत गोर्खा सैनिकों में कुछ साहित्य प्रेमी भी थे। उनका साहित्य प्रेम मणिपुर के गोर्खा समाज में नाट्य परंपरा के सूत्रपात का कारण बना।

इम्फाल में स्थित चौथा असम राइफल्स मणिपुर नेपाली नाटक की जन्मभूमि थी। दुर्गापूजा के अवसर पर अस्थायी मंच का निर्माण करके एकांकी, नाटक, प्रहसन या लघु नाटकों का मंचन किया जाता था। ये नाटक मौलिक न होकर धर्मशास्त्र पर आधारित होते थे। धर्मशास्त्रों की कहानियों, प्रसंगों आदि को नाटकीय आवरण प्रदान करके प्रस्तुत करने की परंपरा सालों तक चली।

नाटक के क्षेत्र में मेजर हेमबहादुर लिम्बू का स्थान अग्रणी है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे मणिपुर के गोर्खा समुदाय के पहले नाटककार थे। 1942 में दुर्गा पूजा के अवसर पर लिंबू द्वारा निर्देशित नाटक राजा हरीश्चंद्र का चौथे असम राइफल्स में सफलतापूर्वक मंचन किया गया था।

इसकी सफलता ने उनके मनोबल को मजबूत किया और उसके बाद उन्होंने क्रमशः कृष्णजन्म, सीताहरण और सती रानक देवी जैसे नाटकों का सफलतापूर्वक मंचन किया। इसके बाद, यह तथ्य भी सामने आया है कि प्रतापचंद्र राई द्वारा निर्देशित नाटक जयद्रथ वध भी उस समय बहुत चर्चित रहा।

उपरोक्त नाटककारों के बाद चौथे असम राइफल्स में टी. बी चंद्र सुब्बा मौलिक नाटककार के रूप में दिखाई देते हैं। उन्होंने कालिया दमन और बहिनीको लागि जैसे नाटकों का सफल मंचन किया। कालिया दमन कृष्णचरित्र पर आधारित नाटक था जबकि बहिनीको लागि नितांत मौलिक नाटक था। इस प्रकार टी.बी चंद्र सुब्बा मणिपुर के नेपाली भाषा में लिखने वाले प्रथम मौलिक नाटककार के रूप में उभरे।

1942 में शुरू हुई नेपाली नाट्य-परंपरा 1950 तक असम राइफल्स जैसे फौजी छावनियों में जारी रही। इसके बाद मणिपुर के अन्य स्थानों में भी नाटकों के मंचन का काम शुरू हुआ। दुर्गापूजा और दिवाली के अवसर पर एकांकी, हास्य-व्यंग्य या अन्य नाटकों के मंचन की परंपरा लंबे समय तक चलती रही।

कांग्लातोंग्बी निवासी स्वर्गीय कमल थापा 'प्रकाश' ने मौलिक नेपाली नाटक के क्षेत्र में महत्ती योगदान दिया है। अपने जीवन के कम समय में, उन्होंने दस से अधिक मौलिक नाटकों का प्रणयन और मंचन किया। उनके असामायिक निधन के साथ, यह परंपरा सुस्त पड़ गई। ये सभी नाटक पांडुलिपियों तक सीमित

वर्तमान में गोर्खा ज्योति प्रकाशन ने कमल थापा द्वारा रचित त्याग शीर्षक नाटक प्रकाशित किया है और अन्य नाटकों को प्रकाशित करने की योजना भी बनाई जा रही है।

कमल थापा 'प्रकाश'

1958 में चिंगमैरोंग नेपाली बस्ती, इम्फाल में जन्मे, कमल थापा कम उम्र से ही विचारशील थे। कमल थापा 'प्रकाश' ने 70 के दशक में नाटक के क्षेत्र में प्रवेश किया। उनके सभी नाटक सामाजिक यथार्थ पर आधारित हैं। सामाजिक विघटन, सामाजिक संबंधों, पारिवारिक समस्याओं, ग्रामीण राजनीति, आदर्श राजनीति आदि के मुद्दों को ध्यान में रखते हुए लिखा गया है। 1973 में उनका पहला मौलिक नाटक सिन्दूर कांग्लातोंग्बी में मंचन किया गया था। इस नाटक ने कमल थापा को एक सफल नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके बाद उन्होंने अन्य नाटकों का लेखन और मंचन किया। हारजीत (1975), सुस्केरा (1977), निश्चल स्मृति, ममता, कलंक, घर-घर को कथा आदि का मंचन बड़ी धूमधाम से किया गया। 1978 में अखिल मणिपुर गोर्खा छात्र संगठन, मणिपुर के तत्वावधान में उन्होंने पाओना बाजार, इम्फाल में स्थित रूपमहल थिएटर में स्वर्गीय लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा रचित नाटक मुनामदन का मंचन किया। इसके सफल मंचन के बाद, इस नाटक की माँग मणिपुर के अन्य क्षेत्रों में हुई। इसे कोलोनी, असम राइफल्स, साइकुल आदि क्षेत्रों में बड़े उत्साह के साथ प्रदर्शित किया गया। इस तरह कमल थापा श्प्रकाशश स्वयं को नेपाली नाटक की दुनिया में एक सफल नाटककार के रूप में स्थापित करने में सफल हुए। उनके द्वारा रचित नाटक ममता अधूरा रह गया है। इस नाटक के पूरा होने से पहले वे बीमार पड़ गए और सदा के लिए इस दुनिया से विदा हो गए। इस प्रकार, मणिपुर के नेपाली नाटक साहित्य ने 1991 में एक चमकता सितारा खो दिया, जिसकी भरपाई आज तक नहीं हो पाई है।

त्याग नाटक कमल थापा का पहला प्रकाशित पूर्णांक नाटक है। यह अक्तूबर 2015 में गोर्खा ज्योति प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया। यह पारिवारिक समस्याओं पर आधारित नाटक है। इसे 20 दृश्यों में विभाजित किया गया है। लेखक ने पात्रों के माध्यम से वास्तविक जीवन की घटनाओं को चित्रित किया है। इसकी भाषा सरल, सहज नेपाली है। पात्रों के स्तर अनुरूप कहीं-कहीं अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। संवाद संक्षिप्त और घटनाक्रम को आगे बढ़ाने में सक्षम हैं। इसमें मंचीय सभी गुण पाए जाते हैं।

त्याग नाटक समय और स्थिति को ध्यान में रखते हुए रचित है। इसके माध्यम से एक आदर्शवादी परंपरा की स्थापना करने का प्रयास किया गया है। 70 के दशक के मणिपुरी नेपाली भाषी जनजीवन की सामाजिक रीति-रिवाज, मान्यता आदि नाटक का वर्ण्य विषय है। इसमें शिक्षा को अंग्रेजी परंपरा के पर्याय के रूप में मानने वाली एक ऐसी युवा पीढ़ी का चित्रण किया गया है, जो ड्रग्स या अन्य कुप्रवृत्ति को सभ्यता मान कर चलती है।

महेश पौड्याल

महेश पौड्याल मणिपुर के दूसरे कुशल नाटककार हैं। उन्होंने 1990 में इरांग, मणिपुर में दाजूको कर्तव्य नाटक लिखा और मंचन किया। उन्होंने 1999 में देशको माटो, और 2001 में दाइजो कांग्लातोंग्बी, शांतिपुर में मंचित नाटक हैं। उन्होंने प्लेटो का नाटक एलेगोरी आफ द केभ (2002) का नेपाली अनुवाद और मंचन किया। चंगा (2008), आमा न हुँदा एक साँझ (2011) उनकी प्रकाशित नाट्य रचनाएँ हैं।

फुटकर नाटक

मणिपुरी नेपाली समाज में कई ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होंने नाटक रचना में योगदान दिया है। इन नाटकों का मंचन विशेष रूप से दुर्गा पूजा के अवसर पर किया जाता है। ये नाटक केवल मंच तक सीमित दिखाई देते हैं। यहाँ ऐसे नाटककारों और उनके द्वारा रचित नाटकों का नामोल्लेख करने का प्रयास किया गया है।

मणिपुर का कांग्लातोंग्बी प्रांत शुरू से ही नेपाली साहित्य का गढ़ रहा है। इस क्षेत्र में बड़ी संख्या में नाटक लिखे और मंचित किए गए। ऐसे नाटकों में चूड़ामणि चापागाईं का प्रहारको चोट (1984), नौलो बिहान (1985), वेदना (1987), आ-आफ्नो व्यथा (1988), तारासिंह बिष्ट रचित आँसू (1984), फेरि खाँडो पखाल्नै पर्छ (1986) शामिल हैं। चूड़ामणि खरेल का अर्चना (1986), रोशन कुमार उप्रेती का त्याग एउटा प्रेमकथा (2001), लक्ष्मण शर्मा का उपहार (2002), समर्पण (2005), शिवकुमार बस्नेत रचित महिमा (2003) दुर्गा पूजा के अवसर पर मंचित नाटक हैं।

कई नाटकों का मंचन कौब्रुलैखा गाँव में भी किया गया। ऐसे नाटकों में पं. नारायणप्रसाद शर्मा द्वारा रचित हरिश्चंद्र (1972) और अमर प्रेम (1976), छोरीको जन्म हारेको कर्म (1978), प्रेम दाहाल रचित बदला (1884), गौरीमान भट्टाराई का खूनको कसम (1991) प्रमुख मंचित नाटक है।

मुकुली गाँव से नंदलाल बजागाई रचित आँसू सरिको हाँसो, अकाल मृत्यु, अभिलाषा, पवित्र प्रेम, अनुसन्धान, बिदाई, स्व. लक्ष्मीप्रसाद मैनाली रचित प्रतिशोध (1993), तोरीबारी से

शिवलाल भण्डारी, इरांग से मणिकुमार पौड्याल, गोविन्द न्यौपाने र टिकाराम पौड्याल,गोमा शर्मा आदि के द्वारा रचित नाटकों का मंचन समय-समय पर किया जा चुका है।

प्रकाश सिवाकोटी 90 के दशक में कालापहाड़ क्षेत्र में उभरने वाले एक अच्छे नाटककार हैं। सिवाकोटी खुद कहते हैं कि उनके कई नाटकों का मंचन हर साल होता आ रहा है। उनके सभी नाटकों में सामाजिकता का पुट विद्यमान हैं।

निष्कर्ष- सन् 1893 में तुलाचन आले द्वारा शुरू की गई मणिपुर की नेपाली साहित्यिक परंपरा संतोषजनक गति से आगे बढ़ती हुई दिखाई देती है। अन्य विधाओं की तुलना में नाट्य विधा में भारी न्यूनता देखी जाती है। भले इस क्षेत्र में रचित सभी नाटक पुस्तक के रूप में प्रकाश में नहीं आए, लेकिन असंख्य नाटकों के प्रणयन और मंचन से इनकार नहीं किया जा सकता। गोर्खाज्योति प्रकाशन, नेपाली साहित्य परिषद् मणिपुर, सिरोई सिर्जना परिवार जैसी साहित्यिक संस्थाएँ ऐसे नाटकों की खोज, संकलन और प्रकाशन के कार्य में अवश्य अपनी अहम भूमिका निर्वहन कर सकती हैं। आशा है इस क्षेत्र में और भी संस्थाएँ आगे आएँगी और नेपाली नाटक साहित्य के विकास में रचनात्मक योगदान देंगी।

सन्दर्भ ग्रंथः

1. भारतीय नेपाली साहित्यको विश्लेषणात्मक इतिहास- गोमा दे.शर्मा, शोधग्रन्थ, मणिपुर विश्वविद्यालय, 2009

2. मणिपुरमा नेपाली जनजीवन, मुक्ति गौतम- नेपाली साहित्य परिषद्, 1999

3. मणिपुरमा नेपाली साहित्यः एक अध्ययन- डॉ. गोमा दे. शर्मा, गोर्खाज्योति प्रकाशन, 2016

4. मौखिक श्रोत- रामप्रसाद पौडेल, चुड़ामणि चापागाई, शिवकुमार बस्नेत (प्रधान- काङ्ग्लातोंग्बी ग्राम पञ्चायत) तारासिंह विष्ट आदि।

-डॉ. गोमा देवी शर्मा
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय
Dist- Sonitpur, Assam-784028

पृष्ठ संख्या 15 का शेष

इस प्रकार न्यीशी समाज के सामान्य परिचय के अंतर्गत उनके रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, पर्व-त्योहार, न्याय व्यवस्था और रीति-रिवाज आदि का अवलोकन किया गया है, जिससे इस समाज की संस्कृति, परम्परा और मान्यताओं को समझा जा सकता है। वर्तमान समय में इस समाज की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं को संरक्षित एवं संवर्धित करना अत्यावश्यक है, क्योंकि संस्कृति का मूल आधार और स्वरूप इन्हीं तत्वों से निर्मित होता है ।

संदर्भ सूची :

1. CUSTOMARY LAWS OF NYISHI TRIBE OF ARUNACHAL PRADESH] Dr- Nabam Nakha Hina] AUTHORS PRESS] 2012] P- 28

2. Nyishi World] Tob Tarin Tara] eastern horizon] Itanagar] 2005] p- 16

3. अरुणाचल की जनजातियाँ और ऐतिहासिक स्थान, डॉ. धर्मराज सिंह, अनुसंधान निदेशालय, अरुणाचल प्रदेश सरकार, ईटानगर, 1994, पृ. 49

4. मनोरम भूमि अरुणाचल, श्री माता प्रसाद, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1995, पृ. 169

-डॉ. मेमा चिरी
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
डी.एन.जी.सी, ईटानगर

न्यीशी लोकगाथाओं में अभिव्यक्त समाज

प्रस्तावना : लोकसाहित्य का संबंध अपने लोक-समाज से और भी गहरा हो जाता है। जब लोकसाहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखते हैं तो यही परखने की कोशिश करते हैं कि उस साहित्य में संबंध समाज की व्याप्ति किस सीमा तक और किस रूप में है। उस साहित्य में समाज के विभिन्न अंगों-उपादानों की प्रस्तुति कितनी है और किस स्वरूप में है, इसकी खोज और मीमांसा ही इस तरह के अध्ययन का विषय बनती है।

लोकगाथाएँ लोकचेतना को गेय शैली में सजीव प्रतिबिम्बित करती हैं। किसी भी देश की सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखने तथा सामाजिक आदर्शों-परम्पराओं को बहाये रखने के लिए लोकगाथाएँ अमूल्य धरोहर हैं। इनमें मानवीय मूल्यों को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने वाली अनेक सरल सारगर्भित कथाएँ समायी हैं। ये गाथाएँ जीवनादर्शों एवं मूल्यों को परिष्कृत करती हैं, ईश्वर के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न करती हैं तथा पुरातन परम्पराओं से हमारा परिचय करती हैं।

न्यीशी लोकगाथाओं में चित्रित परिवार और रिश्ते:

न्यीशी लोकगाथाओं में परस्पर परिवार, नाते-रिश्ते और वेवाहिक जीवन से जूड़ी प्रत्येक पहलुओं को भलिभाँति दर्शाया गया है ।

ऐसा माना जाता है कि जित आने से विवाह के उपरान्त न्यीशी जनजाति के पूर्वज आबू तान्यी पारिवारिक जीवन की शुरूआत इस धरती पर की थी और फिर सामाजिक जीवन का आरम्भ हुआ। लम्बा घर बनाकर जित आने और आबू तान्यी की सारी संताने एक साथ रहने लगीं, तभी से न्यीशी जनजाति में संयुक्त परिवार का आरम्भ हुआ। परिवार में पति-पत्नियाँ, पुत्र-पुत्रियाँ, चाचा-चाची और ताओ-ताई सब एक लम्बे और बड़े से घर के अंदर अलग-अलग चूल्हे बनाकर एक साथ बड़े मजे से रहते हैं। न्यीशी समाज में प्रत्येक संबंध को अलग-अलग नामों से सम्बोधित कर पुकारते हैं। जैसे पिता को आबू/आबो, आबू कहते हैं और माता को आने/आन/यायी कहते हैं। भाइयों को उम्र के हिसाब से आची, पायी, पारियो, इसी प्रकार बहनों को भी उनकी उम्र के हिसाब से पुकारते हैं, जैसे- आते, आयी, आन्यी। मामाजी को कई ,कतअ तथा करियो और मौसी को मते, मयी, मरियों कहकर संबोधित करते हैं।

न्यीशी समाज के परिवार में पिता अहम भूमिका निभाते हैं। वे पूरे परिवार को नियंत्रित कर अच्छी तरह से रखते हैं। चूँकि न्यीशी समाज में बहुविवाह सामान्य बात है, इस कारण पत्नियों को बहुत सशक्त एवं समझदार होना पड़ता है। अधिकांशतः पति अपनी बड़ी पत्नी को विशेषाधिकार देता है। पति चाहे जिस भी पत्नी से जरूरी सलाह-मश्विरा कर सकता है। घर के प्रत्येक सामान में, चाहे वह खेती-बारी हो या पशु या धन- पहली पत्नी को अन्य पत्नियों से अधिक अधिकार मिलता है।

न्यीशी परिवार में बुजुर्गों का सम्मान किया जाता है और वृद्धावस्था में उनका खास ध्यान रखा जाता है। न्यीशी समाज में उस घर में अधिक सम्पत्ति मानी जाती है, जहाँ पर पैतृक खेत, जमीन, जेवरात और बेटियाँ अधिक हो। न्यीशी समाज के लोग चाहे बेटा हो चाहे बेटी, दोनों के जन्म पर खुशियाँ मनाते हैं। इसके पीछे दो कारण हैं- पहला रीति-रिवाज के अनुसार वधू-मूल्य प्राप्त होता है। इसलिए यहाँ बेटियों को बोझ नहीं समझा जाता है। उनके विवाह के लिए माता-पिता और परिवार वालों को परेशान नहीं होना पड़ता है। न्यीशी समाज में बेटियाँ अपने माँ-बाप को अपनी शादी में बहुत से मिथुन वर के घरवालों से दिलवाकर उन्हें खुश कर, विदा हो जाती हैं। प्रत्येक परिवार वाला अपने घर में कम-से-कम एक बेटी की चाह जरूर रखता है, क्योंकि यहाँ बेटी शादी से पहले अपने माँ-बाप का पूरा ख्याल रखती है और शादी के बाद भी अपने भाइयों को पत्नी लाने देने के लिए बहूमूल्य मिथुन छोड़ जाती है। इससे परिवार वालों की आर्थिक रूप से सहायता भी हो जाती है। दूसरा खास कारण यह है कि न्यीशी परिवार में बेटियाँ बेटों से बढ़कर होती हैं। वे बहुत ही परिश्रमी होती हैं। आम तौर पर जैसे-जैसे बेटे बड़े होते हैं वे घर और घर के काम से दूर होते जाते हैं और कभी-कभी अनचाही माँगे भी करने लगते हैं। आज के समय में माँ-बाप चाहें तो प्यार से अपनी बेटियों को भी जमीन का कुछ हिस्सा दे सकते हैं। देखा जाए तो आजकल वे देते हैं।

वर्तमान न्यीशी परिवार अब संयुक्त परिवार से बदलकर एकल परिवार बन चुका है। जिसमें केवल माँ-बाप, बेटा-बेटी रह रहे हैं। परन्तु जब भी वे गाँव जाते हैं तो वहाँ सभी परिवार वाले एक ही बड़े से घर में रहते हैं और एक दूसरे की सहायता करते हैं। न्यीशी लोग कर्मनिष्ठ होते हैं। वे अपने रिश्तों को अच्छी तरह से निभाते हैं और अपने परिवार के प्रति पूर्ण समर्पित रहते हैं। वे अपने परिवार और अपने नाते-रिश्तेदारों की मदद के लिए हरदम तैयार रहते हैं। न्यीशी परिवार जितना बड़ा होता है उतना ही सम्पन्न और मजबूत भी होता है। न्यीशी लोकगाथाओं में इन्हीं पारिवारिक तथ्यों और संबंधों का बहुत बढ़िया ढंग से वर्णन किया गया है। चाहे वह पिता-पुत्र का संबंध हो या माता और पुत्री का, सभी संबंधो को उनके परस्परिक प्रेम-भाव के साथ दिखाया गया है। खासकर न्यीशी गाथाओं में पिता और माता के प्रति पुत्र और पुत्रियों की जिम्मेदारियों, भाई और बहन के अटूट बंधन का बड़े ही मार्मिक तौर पर चित्रण किया गया है। इन

गाथाओं में व्यक्त जो भाव हैं, वे बेहद हृदयग्राही हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पारिवारिक संबंधों में विश्वास और प्रेम यदि हो, तो रिश्ता ज्यादा मजबूत और अटूट बना रहता है। परिवार एकजुट होकर किसी भी कठिनाई का सामना कर सकता है, संगठित रहने से परिजन परिवार में आने वाली समस्त बाधाओं का डटकर मुकाबला कर सकते हैं। इन गाथाओं को देखकर ही हम इनमें छिपे हुए मूल भाव को परख सकते हैं और उनमें जो अहसास हैं उन्हें महसूस कर अपनी जिन्दगी में जिन भी रिश्तों को निभाना हो, उन्हें बड़े अच्छे ढंग से निभा सकते हैं।

दोचाक ताके हमअ केन्या
दोचक बू ताके ग गुम्बे गुम्बे
अ हमअ दी नजे न्यी गुम्बे गुम्ब
केन्या नजे न्यी गुम्बे गुम्बे
अ तोङसी गु तोङली ला गुम्बे गुम्बे ।

प्रस्तुत लोकगाथा में एक परिवार हर मुमकिन कोशिश करता है अपनी बेटी को बचाने के लिए और उसे एक अच्छा भविष्य देने के लिए। दोचाक ताके अपनी पत्नी और बेटी केन्या के साथ बहुत खुशी-खुशी रहते थे। कहते हैं, केन्या दुनिया की सबसे सुन्दर लड़की थी। वह जहाँ भी जाती, सारे लोग उससे बहुत प्रभावित होते थे। वह बहुत अच्छी और सबका ध्यान रखने वाली एक खुशमिजाज लड़की थी। कहते हैं कि प्रकृति भी उससे बात करती थी।

न्यीशी वंश-परम्परा से संबंधित गाथाएँ:-

न्यीशी समाज में एक बहुत ही आकर्षक बात यह है कि यह एक जातिहीन समाज है। यहाँ जाति के नाम पर भेद-भाव नहीं रखा जाता है। वे केवल इस बात को मानते हैं कि सभी आबू तान्यी के बच्चे हैं।न्यीशी समाज में वंश-परम्परा को बहुत महत्त्व दिया जाता है (इसके पीछे उनका यह तर्क है कि यदि हम अपनी वंशावली के बारे में जानकारी नहीं लेंगे तो भविष्य में अनजाने में भाई-बहन के बीच विवाह हो सकता है, जिसे न्यीशी न्यीमे चीनङ कहते हैं। यह किसी भी पाक रिश्ते के लिए अच्छा नहीं माना जाता है और न ही परिवार के लिए। अपने वंश के अंदर कौन-कौन सी जातियां शामिल हैं, यह जानना एक युवक और युवती के लिए अति आवश्यक है, वरना अज्ञानतावश कई बार ऐसी गलती हो जाने पर परिवार में दुर्घटना हो सकती है- ऐसा लोक-विश्वास है।इसी गलती को सुधारने और न होने देने के लिए वंश के बड़े-बूढ़े युवा पीढ़ी को समय-समय पर अपने वंश के बारे में जानकारी देते रहते हैं। इसी वंश-परम्परा की झाँकी हम न्यीशी लोकगाथाओं में भी देख सकते हैं। इन लोकगाथाओं में हमें अपने वंश की परम्परा के बारे में भली-भाँति ज्ञान प्राप्त होता है। हम यह जान सकते हैं कि इस पूरे संसार में जीव और मानव का संचार और प्रसार कैसे हुआ। उसका विकास और उसमें आए बदलाव को भी हम इनमें देख सकते हैं। साथ ही अपने पूर्वजों के बारे में भी अच्छी तरह जान सकते हैं। हम यह भी देख सकते हैं कि किस प्रकार आबू तान्यी ने विभिन्न स्त्रियों से विवाह कर इस संसार में वंश-परम्परा को आगे बढ़ाया है। ऐसा माना जाता है कि आबू तान्यी के पास एक ऐसी आकर्षक शक्ति थी कि वह किसी भी जीव से शादी कर सकते थे। इसलिए इस संसार के सभी जीव तान्यी से उत्पन्न हुए, ऐसा माना जाता है।

तान्यी की सभी पत्नियों के बारे में जानने के बाद ही हम यह जान सकते हैं कि आबू तान्यी की किस पत्नी से कौन पैदा हुआ और वंश परम्परा की शुरुआत कैसे हुई थी। न्यीशी लोकगाथाओं से हम इसके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

इन गाथाओं में जाकर हम अपने पूर्वजों के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उनसे रूबरू हो सकते हैं।

आबू तान्यी न्योहङ चङा लोईङ तमङ ने3
अै सचङ ग अ चोङतोङ दो अ हतुङ न्यी
आबू अम आबू दो तान्यी लाङाम तुङरू दी
तुरु दी अ आबू दी तारू पचा अ लाङाम।
अै तान्यी ग अ न्यीहङ चङा लोईङ अ

यह गाथा है आबू तान्यी की पत्नी चङा लोईङ तामङ की। कहा जाता है कि धरती पर चोङतोङ आने और दिकिया आबू को दो पुत्र हुए- आबू तान्यी और पचा तारु। आबू तान्यी स्वभाव से चालाक और तेज था और आबू तारू मंद और बुद्धू था। आबू तान्यी की बहुत सी पत्नियाँ थीं, जिसमें से चङा लोईङ तामङ बहुत सुन्दर और तेज थी। चङा लोईङ तामङ के बहुत से पुत्र हुए। पहले न्यीकुम और हारीङ हुए। न्योकूम का बेटा न्यीबू अर्थात् बड़ा पुजारी बना और फिर चङा लोईङ और तान्यी के अन्य बेटे हादे से हारिङ हुआ और न्यीबङ से न्यीके और न्यीगर हुआ। तान्यी के पुत्र न्यीबङ से न्यीते हुआ जो बहुत होशियार था।धैर्यवान और चालाक था। इन्होंने इस संसार में मानव जाति का नेतृत्व किया है।

आबू न्यीया से ही न्यीशी वंशज का आरम्भ माना जाता है। आबू न्यीया के बेटे हारिङ और हारि माने जाते हैं। हारिङ के बेटे रीङदो और हारि के रिकू। रीङदो के बेटे दोपुम, दोदुम, दोलू तथा रिकू के कूयङ माने जाते हैं। यही न्यीशी के वंशज माने जाते हैं।न्यीशी समाज में वंश-परम्परा बहुत अहमियत रखती है। इसलिए प्रत्येक जाति के लोग अपने पूर्वजों के बारे में जानकारी इसी वंश-परम्परा के तहत जान और समझ सकते हैं। इसके द्वारा आज की युवा पीढ़ी अपने और अपने पूर्वजों से जुड़ी तमाम भूतकाल विषयक जानकारी प्राप्त कर अपने वर्तमान को साफ तौर पर पहचान सकती है और अपने आने वाले भविष्य को सुरक्षित रख सकती है।

साथ ही हम अपने आस-पास की जनजातियों की

वंशावली को भी जान और समझ सकते हैं। इन वंशावलियों को जानने से हम अपने लोगों में भाईचारे के भाव को और मजबूत बना सकते हैं। यह हमारे मानवीय संबंधो को सशक्त और अच्छा बनाने में मददगार हो सकती हैं।

न्यीशी लोकगाथाएँ उत्सव के विभिन्न रुप :

अरुणाचल की न्यीशी जनजातीय एक उत्सवप्रिय समाज है। न्यीशी अरुणाचल प्रदेश का एक बड़ा और प्रमुख जनजातीय समूह है। इस समुदाय में भी भिन्न-भिन्न अवसरों पर बहुत से पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं। न्यीशी समुदाय के लोग बहुत ही आकर्षक, दिलचस्प और शानदार तरीके से अपने त्योहारों को मनाते हैं। उनके त्योहारों में उनके पारम्परिक रीति-रिवाज और सभ्यता की झाँकी मिलती है। वे अपने त्योहारों की शुरूआत घर पर विभिन्न अनुष्ठानों को अच्छे से पूरा करने के बाद करते हैं और जब त्योहार समाप्त हो जाए तो उसके बाद भी इस त्योहार में शामिल पुजारी और उनके परिवार वाले कुछ दिनों तक अपने खान-पान में विशेष प्रकार के व्यंजनों का ही इस्तेमाल करते हैं। इस व्यस्त जीवन में वे आज बहुत कम ही नियमों का पालन कर पा रहे हैं। इसका मुख्य कारण आधुनिक विज्ञान और विदेशी संस्कृति और सभ्यता के हस्तक्षेप से हो रहा उनका मानसिक परिवर्तन है। कई लोग विदेशी धर्म के आगमन को इसका मुख्य कारण मानते हैं। उनका आरोप है कि विदेशी धर्म ने सारी जनजातीय सभ्यता और संस्कृति की अस्मिता को समाप्त कर दिया है। अब जनजातीय लोग अपनी पहचान ढूँढ रहे हैं।

प्रत्येक उत्सव की अपनी अलग पहचान और महत्त्व होता है। न्यीशी समाज के तीन प्रमुख त्योहार हैं- न्योकूम यूलो, लोङते यूलो और बुरी यूलो। सभी त्योहारों में एक सामान्य लक्षण यह है कि वे अपने आराध्य देवी-देवताओं से समस्त मानव जाति की सुरक्षा और मंगलमय जीवन की कामना करते हैं और मानव जाति की नाना प्रकार की दुष्ट आत्माओं के प्रकोप से रक्षा तथा सभी प्राकृतिक और अप्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा की प्रार्थना करते हैं। इस धरती का पारितंत्र संतुलित रहे, ताकी मानव जाति और उससे जुड़े तमाम जीव-जन्तु फलें-फूलें। यह उत्सव न्यीशी समुदाय की सांस्कृतिक धरोहर को एक खास अंदाज में दर्शाता है। साथ ही इन त्योहारों के माध्यम से इनके मूलभूत रीति-रिवाजों एवं प्रथाओं और परम्पराओं को निरंतर प्रोत्साहित करता है। इसलिए न्यीशी समुदाय के लोग इसे बेहद भव्य एवं पूरे पारम्परिक तौर पर आयोजित करते हैं। यहाँ प्रत्येक कार्यक्रम उसी क्रम और उत्साह के साथ मनाया जाता है जैसे कि उनके पूर्वज मनाते आ रहे हैं। परन्तु आज के इस आधुनिक वातावरण में कुछ चीजों और नियमों को हटा दिया गया है और कुछ नए बदलाव किये गए हैं। परन्तु बदलाव का अभी तक उतना प्रभाव नहीं पड़ा है। न्यीशी लोकगाथाओं में न्यीशी उत्सवों में निहित प्रथाओं एवं क्रियाकलापों का वर्णन मिलता है। यह बहुत ही रोचक और अद्‌भुत होता है।

कुछ विशेष न्यीशी उत्सवों से संबन्धित लोकगाथाएँ निम्नलिखित हैं-

१ न्योकूम बो तपा दबे।
२ रीकाम बो पादा ङो।
३ बुरी नीजर ङूलू ना जाई अ जा।
४ आतू गुङते आयू गामरू।

सीलू गे आतू गुङते ग आयू गामरू ग गिन्दू आलुसो,
आबू न्यीया कू ङाम, रीचि-किमा आम, दिन्ते-सुबु-आम,
ताचङ-ताबिघू-अम, हुगर मुदूबे, रीकिय-दोहिग-ये पयङमा दबे,
दीराग यारङ-ङ राङमा दबे, नू कीयललूङ कीययेय
जीपपो-का,
हगलो जीपपीका.........आतु गुङते आयू गामरू नू............

भावार्थ: इस गाथा में आतू गुङते और आयू गामरू से सभी भक्त मानव जाति के अच्छे स्वास्थ्य, वैभव और सुख-शांति का आशीर्वाद मांगते हैं और आतू गुङते तथा आयू गामरू से यह प्रार्थना करते है कि वे नाना प्रकार की बुरी आत्माओं से उनकी रक्षा करे तथा साथ ही इस संसार में जो भी संक्रामक रोग, महामारी, अकाल, सूखा फैलें उनसे एवं समस्त प्राकृतिक और अप्राकृतिक आपदाओं तथा बुरी चीजों से उन्हें भविष्य में बचाए रखँ। न्यीशी समुदाय के लोग इस उत्सव के माध्यम से अपनी प्राचीन प्रथाओं और परम्पराओं तथा आदिम संस्कृति का पालन करते दिखायी देते हैं। इस त्योहार के वक्त सभी लोग जो भी इस उत्सव में शामिल होते हैं वे विशेषकर पोमो अजी अर्थात् काले और सफेद रंग की बारीकी से बुनी हुई पारम्परिक पोशाक पहनते हैं। इस उत्सव पर रंगीन वस्त्र पहनना मना है। यह पोशाक अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा भाव को दर्शाती है।

न्यीशी लोकगाथाओं में उपस्थित भक्ति : न्यीशी लोकगाथाओं में भक्ति-रस बहुत ही परिपक्व है। यहाँ आदिम धर्मशास्त्रों पर आधारित किसी धर्म-ग्रंथ का अध्ययन नहीं होता, बल्कि मानव जीवन के दीर्घ अनुभवों पर आधारित मूल्य होते हैं, जो भक्ति के रस से सराबोर होते हैं। यहाँ भक्ति योग और शक्ति से नहीं, बल्कि नीति और प्रकृति से संबंधित है। न्यीशी लोकगाथों में मौजूद धर्म किन्हीं जटिल सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है और न ही न्यीशी समाज में कोई तीर्थखस्थान होता है। वे केवल अपने मानवीय मूल्य और अपनी पालनहार प्रकृति को ही अपना धर्म मानकर उसकी पूजा करते आये हैं। वे अपने पूर्वजों के दीर्घ अनुभवों से अपने धर्म का संचालन करते आये हैं। इसी कारण इनकी आराध्य प्रकृति है, कोई मूर्तिमान ईश्वर/देव नहीं। न्यीशी लोकगाथाओं के द्वारा हम उनकी धर्म-विषयक मान्यताएँ, विभिन्न मतों, पूजा-पद्धतियों तथा अनुष्ठानों के बारे में जान सकते हैं। न्यीशी जनजाति के लोगों के धर्म की अवधारणा पुजारियों,

आत्माओं और प्रकृति से जुड़ी हुई है। इनसे जुड़ी उनकी कई मान्यताएँ और विश्वास आज भी जीवित हैं। इन धार्मिक लोकगाथाओं में इनके देवी-देवताओं के जन्म, यश और प्रसार-वृतांत के रूप देखने को मिलते हैं। न्यीशी लोगों ने जिस दिव्य शक्ति की सत्ता को सदैव स्वीकर किया है, उसका अस्तित्व एवं उसके प्रति अपने श्रद्धा-भाव को अपनी लोकगाथाओं के माध्यम से जीवित रखा है। इस कारण न्यीशी लोकसाहित्य में न्यीशी लोकगाथाओं का अपना महत्त्व है। इनमें मुख्य रूप से अपने आराध्य के कीर्तिगान समाहित हैं। न्यीशी समुदाय में ईश्वर और साधारण मनुष्य के बीच मध्यस्थ का काम पुजारी न्यीबू लोग निभाते हैं। वे ही धार्मिक गाथाओं को लोगों तक संप्रेषित करते हैं। यह न्यीबू बहुत ही खास होते हैं। वे जन्मजात इस प्रतिभा को लेकर आते हैं और आम लोगों की मदद करते हैं। उनके पास एक खास अलौकिक शक्ति होती है जिससे वे मनुष्य को बुरी आत्माओं के कष्ट से मुक्त कर सकते हैं। न्यीबू तीन तरह के होते हैं, 'न्यीजिक न्यीबू' जो साधारण रोगों का इलाज कर सकते हैं तथा अण्डा 'पुपुअ' और चूजे 'रू' के गुर्दे द्वारा शकुन-अपशकुन देखते हैं। दूसरे न्योक न्यीबू, जो मनुष्य और ऊई अर्थात् प्रेत-आत्माओं के बीच मध्यस्थ का काम करते हैं। वे बलि देकर सभी तरह के रोगियों का इलाज करते हैं। सबसे अंत में सबसे बड़े न्यीबू आते हैं जिन्हें न्यीबू बूते कहते है, न्यीबू बूते सबसे ज्यादा ताकतवर और शक्तिशाली होते हैं। वे सभी प्रकार के रोगों से लेकर बड़े-बड़े अनुष्ठान भी करवा सकते हैं जिससे कि किसी वंश की रक्षा की जाय। वे विशेष सम्मानित एवं सक्षम न्यीबू अर्थात् पुजारी होते हैं। इनकी संख्या बहुत कम है और आज के दौर में इनका महत्त्व भी कम हो गया है। परन्तु, आज भी वे अपनी शक्तियों से निर्वासित नहीं हैं। इन न्यूबों को न्यीकी नामक महान पुजारी ने असाधारण प्रशिक्षण दिया था, लोकगाथाओं में महान पंडित न्यीकी की ऐसी कथा आज भी बड़े चाव से गायी जाती है। यह गाथा कुछ इस प्रकार से है:-

न्यीकी
अ कूलू दे आबू-आपा ग गाम्तर अ दी अै
आतु न्यीकी अ नू अ
आ न्यीकी अ नू अ
ताजी ग न्यीकी अ नू अ ।

इस गाथा में महान पुजारी आतु न्यीकी की कथा है। ऐसा माना जाता है कि आतु न्यीकी इस धरती के पहले पुजारी थे, जिनके पास ऊयू ख्रओराम से लड़ने की अपार शक्ति थी । उन्होने अपनी शक्तियों का कभी गलत प्रयोग नहीं किया, परन्तु दूर घने जंगलों में अकेले रहने के कारण वे मानव जाति के सम्पर्क से कटे रहने लगे। और उधर एक दिन संसार में दोजङ ऊयू (पहाड़ो के शैतान) और नाना प्रकार की दुष्ट आत्माएँ मनुष्य को परेशान करने लगे । संसार में हाहाकार मच गया। तभी न्यीकी आबू अपनी शक्तियों का प्रयोग कर शैतानों को मारने लगे। परन्तु शैतानों की आबादी बहुत अधिक बढ़ गयी थी, इसलिए उन्होने तय किया कि वे उनसे लड़ने के लिए अन्य लोगों को तैयार करेंगे। इस प्रकार उन्होने धरती से खास लोगों को इसके लिए चुना जिनमें से उन्होने न्यीबू, न्यीजिक, न्यीकियोक को अपनी अलौकिक शक्तियों का प्रशिक्षण और ज्ञान प्रदान किया और इस तरह उन सभी ने मिलकर इस संसार को नष्ट होने से बचा लिया।

न्यीशी लोकगाथाओं में निहित मानवधर्म :

न्यीशी लोकगाथाओं में जब हम देखते हैं तो पाते हैं कि मानव तो क्या पशु-पक्षी एवं प्रकृति जगत भी इसके दायरे में आ जाता है। उदाहरण के लिये

'चोङ तोङ आनेङ्ख' नामक लोक-गाथा को देखा जा सकता है। इस लोकगाथा के अन्त में जो निष्कर्ष दिया गया है तो उसमें सिर्फ न्यीशी जाति का नाम न लेकर मनुष्य मात्र की बात की गई है

'तान्यी की इन बुरी हरकतों के कारण आज भी मनुष्य को मरने के बाद दफनाते वक्त बहुत से नियमों का पालन करना पड़ता है।

आज भी आबू तान्यी के कुकर्मो के कारण मनुष्य दुर्घटना का शिकार होते हो आ रहे हैं। यदि तान्यी अपने माँ-बाप का कहना मानते, हम मनुष्यों को आज अप्राकृतिक रूप से दुर्घटनाओं का शिकार कभी नहीं होना पड़ता।'

साहित्य चाहे कोई भी हो, उसकी पक्षधरता हमेशा मानवता के प्रति ही होती है, यदि वह सत्साहित्य है तो। फिर भले वह परिनिष्ठित साहित्य हो अथवा लोकसाहित्य। चाहे वह विधा कहानी हो, कविता हो, नाटक हो या कोई अन्य; लोकगीत, लोककथा, लोकगाथा हो या कुछ और, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस दृष्टि से जब हम न्यीशी लोकगाथाओं को देखते हैं तो पाते हैं कि उनमें भी मानवतावादी स्वर बहुत गहरा और प्रत्यक्ष है। सबसे पहले तो यह मानवतावादी भावना हमें इस जनजाति से संबन्धित धार्मिक लोकगाथाओं में ही नजर आती है जहां कि प्रार्थना के स्वर मात्र न्यीशी जनजाति के कल्याण तक ही सीमित नहीं रहते, अपितु समूची मानव-जाति के कल्याण की कामना इनमें निहित रहती है-

"हे माँ सूर्यदेवी! हम (मानव) आपको नमन करते हैं। हम आपका यशोगान करते है। आप हमारी मार्गदर्शक बनो। आपका शुभाशीर्वाद सदा हमारी सहता करे। सदा हमारी रक्षा करे।

हे माँ सूर्यदेवी! आपकी दया से आज हम (मानव जाति) जीवित हैं। आपका शुभाशीर्वाद ही हमारा रक्षक है। हे माँ सूर्यदेवी! हम (मानव) आपको नमन करते हैं।"2

असल में इस जनजाति के नाम में ही मानवतावाद निहित है। "स्वयं को आबोतानी के वंशज मानने वाली निसिङ जनजाति का 'नी' अर्थात मानव से तात्पर्य है। 'नी' से ही निशिंग शब्द की व्युत्पत्ति हुई है जो सार्थक है। 'नी' अर्थात 'मानव', और मानवता से ही संसार गतिशील है। अतः निशिंग 'मानवतावाद' से युक्त 'मानव' हैं जो संसार की गतिमान चालों से कदम-से-कदम मिलकर चल रहे हैं।"3 न्यीशी लोकगाथाओं में उनके पूर्व-पुरुष आबू तानी से ही प्रकृति तथा सृष्टि के अन्यान्य अनेकानेक उपादानों तथा प्राणियों की उत्पत्ति मानी गयी है, जिससे मानव-जाति का प्रकृति तथा सृष्टि के अन्य मानव तथा मानवेतर प्राणियों से सहजात रिश्ता बनता है। यह भी एक कारण है कि जिससे न्यीशी लोकगाथाओं में समस्त प्राणियों एवं प्रकृति के प्रति सहानुभूति एवं मानवतावाद से भरे स्वर सुनाई पड़ते हैं।

न्यीशी लोकगाथाओं में उपस्थित प्रेम भाव : न्यीशी लोकसाहित्य में कई प्रेम संबंधी गाथाएँ उपलब्ध हैं जो मर्मस्पर्शी होने के साथ ही लोक-जीवन में प्रेम के सत्स्वरूप और विविध आयामों को दर्शाती हैं।

आबङ ताबङ, बुरू तारूङ ला आन्यी जरपुङ , बरमे जरयुङ न्यगा (लड़के):- असो असी न गारूङ अ गारूङ अ,। न्यीजर इसी न गारूङ अ गारूङ अ।

न्यीदो तोलो के गारूङ गारूङ अ। यह जुगलबंदी शैली में गायी जाने वाली एक प्रेमगाथा है। इसमें दो युवकों तबङ और तारूङ तथा दो युवतियों जरपुङ और जरयुङ की कथा है। दोनों युवकों को न्यीमें न्योकू अर्थात चीन में व्यापार करने जाते वक्त रास्ते में यह दो बहनें मिल जाती हैं। दोनों बहनें भी सामान खरीदने चीन जा रही होती हैं। दोनों भाई इन्हें देखते ही इनकी सुन्दरता में खो जाते हैं और सफर के दौरान इन्हें लुभाने की कोशिश करते हैं।

काम्पू ला राम्पू न्यू ला सअ ला सिरियों बून्यू:-

न्यगा(लड़के):- अ कामपु अ हमी दी अ रामपुअ हमी दी
अ ङाक आची ग अ ङाक ग पायी ग अ
अ पुदुम अ माम्पले लो अ रोङ कने माकु अ लो,
अ कामपु ङून्यी अ दी अ रामपुअ ङून्यी अ दी,
न्यीमें(लड़कीयाँ):- आयी अ मादंग अ तोजा, तोजा तेनङ
मादंग, अ तोजा, तोजा,
डा. ग आने दी तोजा तोजा,
डा. ग आबू दी तोजा तोजा,
न्यीबू ग यापा डा. तोजा तोजा,
अरियूम बू माबक तोजा तोजा ।

इस प्रेमगाथा में दो युवक काम्पू और राम्पू तथा दो युवतियाँ सिअ और सिरियों चीन जाते हैं सामान खरीदने के लिए। उसी सफर पर वे एक-दूसरे से मिलते हैं। दोनों बहनें न्यीमें न्योकू (चीन) से ढेर सारे गहने खरीदती हैं और दोनों युवक भी खूब सामान खरीदते हैं। चारो जनों में सफर के दौरान प्रेम होता है।

न्यीशी लोकगाथाओं में निहित संस्कृति : न्यीशी लोकगाथाओं में न्यीशी संस्कृति से सम्बन्धित बहुत से आचार-व्यवहार, मूल्य, मान्यताएँ, दैनिक उपयोग की वस्तुएँ, खान-पान की चीजों, कृषि के उपकरण आदि का वर्णन देखने को मिलता है। स्थानीय मदिरा और मांस यहाँ की भोज्य-संस्कृति में है। सांस्कृतिक परिदृश्य के अंतर्गत न्यीशी समाज की आर्थिक स्थिति, न्यीशी समुदाय में प्रचलित रही मिथुन की देखभाल करने के लिए दूसरे व्यक्ति को देना (गोतूङ तुङनाम), शादी-ब्याह के नियम (न्यीमे न्यीदा मनङ), नवजात शिशु से संबंधित मान्यताएँ, बच्चे के पैदा होने के बाद की रस्में, शव को दफनाने की रस्में, विभिन्न प्रकार से होने वाली मृत्युओं के नाम और उनको दफनाने के विभिन्न तरीके, परमात्मा/देवी देवता, सृष्टि का निर्माण, शकुन-अपशकुन, अच्छे-बुरे जादू-टोने एवं अनुष्ठान, परोपकारी आत्मा अर्थात् देवी-देवता, विभिन्न प्रकार के दोली ऊयू बीमारी वाले ऊयू (आत्माएँ), प्रमुख पर्व-त्योहार, न्यीशी समुदाय के संगीत एवं नृत्य, न्यीशी लोक-नृत्य, न्यीशी समुदाय के वाद्य यंत्र, न्यीशी के पारम्परिक खेल-कूद, न्यीशी लोकसाहित्य एवं न्यीशी लोक-भाषा, न्यीशी जाति के मिथक, न्यीशी के पहनावे, न्यीशी के धार्मिक मूल्य आदि का विस्तार से परिचय दिया गया है।

'रिसि मासि' लोकगाथा में रिसि अपने भाई मासि से विवाह योग्य कन्या के गुणों पर बात करते हुए कहता है कि भाई मासि, जिस लड़की को ऊयो अर्थात् मदिरा बनाना नहीं आता है और जो स्वादिष्ट भोजन नहीं पका सकती है उससे हम बिल्कुल भी विवाह नहीं करेंगे, यह बात याद रखना।

उपसंहार इन लोकगाथाओं में हमें यह जानने को मिलता है कि न्यीशी जनजाति के लोगों की जीवन-शैली किस प्रकार से है? उनकी आकाश, धरती, जगत, जीवन और प्रकृति आदि के प्रति क्या अवधारणाएँ है। न्यीशी जनजाति की विविध लोक गाथाओं में पारिवारिक प्राकृतिक घटना व दुर्घटना, प्रेम-प्रसंग, करुणामयता आदि से सम्बद्ध लोक-घटनाओं का चित्रण हुआ है। इन गाथओं का कथानक रोचक एवं संदेशवाहक है तथा इनके पात्र बहुत ही सजीव और जीवंत है। यह गाथाएँ बहुत छोटी भी हो सकती हैं और या फिर लम्बी भी, परन्तु इसमें मनोरंजन भी है और शिक्षा के साथ-साथ मानव जीवन की अनेक प्रकार की मनोवृत्तियों का प्रतिनिधित्व भी हुआ है। कुछ लोकगाथों को यहाँ के स्थानीय लोक गायको ने संगीत सहित आडियो कैसेट में संकलित करके जन-जन तक पहुँचाया और लोगों को इन गाथाओं से परिचित करवाया है और साथ ही इनका

शेष पृष्ठ संख्या 26 पर

पूर्वोत्तर भारत का भाषाई परिदृश्य और हिन्दी की स्थिति

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र बांग्लादेश, भूटान, चीन, म्यंमार और तिब्बत- पाँच देशों की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित है । असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम- इन आठ राज्यों का समूह पूर्वोत्तर भौगोलिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । देश के कुल भौगलिक क्षेत्र का 7.9 प्रतिशत भाग पूर्वोत्तर क्षेत्र के आठ राज्यों में समाविष्ट है । कुल क्षेत्रफल का 52 प्रतिशत भू-भाग वनाच्छादित है । इस क्षेत्र में 400 समुदायों के लोग रहते हैं। इस क्षेत्र में लगभग 220 भाषाएँ बोली जाती हैं । संस्कृति, भाषा, परंपरा, रहन-सहन, पर्व-त्योहार आदि की दृष्टि से यह क्षेत्र इतना वैविध्यपूर्ण है कि इस क्षेत्र को भारत की सांस्कृतिक प्रयोगशाला कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा । इस क्षेत्र में आदिवासियों का घनत्व देश में सर्वाधिक है । सैकड़ों आदिवासी समूह और उनकी उपजातियाँ, असंख्य भाषाएँ व बोलियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के रहन-सहन, खान-पान और परिधान, अपने-अपने ईश्वरीय प्रतीक, आध्यात्मिकता की अलग-अलग संकल्पनाएं इत्यादि के कारण यह क्षेत्र अपनी विशिष्ट पहचान रखता है । इस क्षेत्र में सर्वाधिक वन व वन्य प्राणी हैं । वनस्पतियों, पुष्पों तथा औषधीय पेड़-पौधों के आधिक्य के कारण यह क्षेत्र वनस्पति-विज्ञानियों एवं पुष्प-विज्ञानियों के लिए स्वर्ग कहलाता है । पर्वतमालाएं, हरित घाटियां और सदाबहार वन इस क्षेत्र के नैसर्गिक सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं । जैव-विविधता, सांस्कृतिक कौमार्य, सामूहिकता-बोध, प्रकृति प्रेम, अपनी परंपरा के प्रति सम्मान भाव पूर्वोत्तर भारत की अद्वितीय विशेषताएं हैं । अनेक उच्च श्रृंखला नदियों, जल- प्रपातों, झरनों और अन्य जल स्रोतों से अभिसिंचित पूर्वोत्तर की भूमि लोक साहित्य की दृष्टि से भी अत्यंत उर्वर है ।

असमिया साहित्य, संस्कृति, समाज व आध्यत्मिक जीवन में युगांतकारी महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव का अवदान अविस्मरणीय है। उन्होंने पूर्वोत्तर क्षेत्र में एक मौन अहिंसक क्रांति का सूत्रपात किया। उनके महान कार्यों ने इस क्षेत्र में सामाजिक-सांस्कृतिक एकता की भावना को सुदृढ़ किया । उन्होंने रामायण और भगवद्गीता का असमिया भाषा में अनुवाद किया । पूर्वोत्तर क्षेत्र में वैष्णव धर्म के प्रसार के लिए आचार्य शंकरदेव ने बरगीत, नृत्य-नाटिका (अंकिया नाट), भाओना आदि की रचना की । उन्होंने गांवों में नामघर स्थापित कर पूर्वोत्तर क्षेत्र के निवासियों को भाईचारे, सामाजिक सद्भाव और एकता का संदेश दिया । श्रीमंत शंकरदेव का जन्म 1449 में वर्तमान नगाँव जिले के बोरदोवा के निकट अलीपुखुरी में हुआ था। बचपन में ही उनकी माता सत्य संध्या का निधन हो गया। उनके पिता का निधन भी बचपन में हो गया था और उनकी दादी ने उनका पालन-पोषण किया । उन्होंने 13 साल की उम्र में अपनी स्कूली शिक्षा शुरू की और 17 वर्ष की आयु तक अपनी शिक्षा पूरी कर ली । उन्होंने बचपन में ही अपनी बुद्धिमत्ता और प्रतिभा से लोगों को चमत्कृत कर दिया था। उनकी शादी जल्द हो गई थी, लेकिन शादी के तीन वर्ष बाद ही उनकी पत्नी का निधन हो गया । इसके बाद वे ज्ञान की तलाश में उत्तर भारत की तीर्थ यात्रा पर निकल पड़े । उन्होंने 32 वर्ष की उम्र में विरक्त होकर प्रथम तीर्थयात्रा आरंभ की और उत्तर भारत के समस्त तीर्थों के दर्शन किए। तीर्थयात्रा से लौटने के पश्चात् शंकरदेव ने 54 वर्ष की उम्र में कालिंदी से विवाह किया। तिरहुतिया ब्राह्मण जगदीश मिश्र ने बरदौवा जाकर शंकरदेव को भागवत सुनाई तथा भागवत ग्रंथ उन्हें भेंट किया। शंकरदेव ने जगदीश मिश्र के स्वागतार्थ 'महानाट' के अभिनय का आयोजन किया। कर्मकांडी विप्रों ने शंकरदेव के भक्ति प्रचार का घोर विरोध किया। दिहिंगिया राजा से ब्राह्मणों ने प्रार्थना की कि शंकर वेद विरुद्ध मत का प्रचार कर रहा है। कुछ प्रश्न पूछकर उनके उत्तर से संतुष्ट होने के उपरांत राजा ने इन्हें निर्दोष घोषित कर दिया । इन्होंने अनेक पुस्तकों की रचना की । 97 वर्ष की अवस्था में इन्होंने दूसरी बार तीर्थयात्रा आरंभ की। उन्होंने कबीर के मठ के दर्शन किए तथा उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की । इस यात्रा के पश्चात् वे बरपेटा वापस चले आए। कोच राजा नरनारायण ने शंकरदेव को आमंत्रित किया । शंकरदेव के वैष्णव संप्रदाय का मत एकशरण है। इस धर्म में मूर्तिपूजा की प्रधानता नहीं है। धार्मिक उत्सवों के समय केवल एक पवित्र ग्रंथ चौकी पर रख दिया जाता है, इसे ही नैवेद्य तथा भक्ति निवेदित की जाती है। इस संप्रदाय में दीक्षा की व्यवस्था नहीं है। अपनी तीर्थ यात्रा में वे उत्तर भारत के प्रसिद्ध संत कबीर के साथ-साथ कई ऋषियों और महापुरुषों से मिले । तीर्थयात्रा से लौटने के बाद श्रीमंत शंकरदेव माजुली द्वीप में बस गए और वैष्णव धर्म का प्रचार करना शुरू कर दिया। वे कर्मकांड, अर्थहीन संस्कार और अनुष्ठानों के खिलाफ थे तथा लोगों को धर्म के सरल मार्ग का अनुसरण करने के लिए प्रेरित करते थे । उनका मानना था कि सभी मनुष्यों में एक ही सर्वोच्च आत्मा विद्यमान है । उन्होंने सभी प्रकार के वर्ग भेद और मानव निर्मित सामाजिक बाधाओं का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने संगीत और भजन गायन के महत्त्व को प्रमुखता से रेखांकित किया । अलीपुखुरी असम के लोगों के लिए एक पुण्य भूमि है । बोरदोवा सत्र का असम में विशेष महत्त्व है । यहाँ एक कीर्तन घर है जिसके निकट पत्थर का एक टुकड़ा रखा है। इस पत्थर को पादशिला के नाम से जानते हैं । ऐसा विश्वास है कि इस पर श्रीमंत शंकरदेव के पद चिह्न अंकित हैं, यहाँ पर होली का त्योहार और वैष्णव संतों की जयंती व पुण्य तिथि धूमधाम से

वीरेन्द्र परमार

आयोजित की जाती है । श्रीमंत शंकरदेव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

वे असम के महान समाज सुधारक, नाटककार, अभिनेता, संगीत मर्मज्ञ और लेखक थे । शंकरदेव गृहस्थ परंपरा के संत थे । उन्होंने विवाह किया और गृहस्थ आश्रम में रहते हुए संत के रूप में अपना जीवन निर्वाह किया । अपने शिष्यों के लिए भी उन्होंने ऐसा ही संदेश दिया, इसलिए शंकरदेव के अनुयायी विवाह करते हैं, संतान उत्पन्न करते हैं और संत जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। उनके अनुयायी रासलीला, नृत्य संगीत और नाटक भी करते हैं। माजुली द्वीप से शंकरदेव का अन्योन्याश्रय संबंध है। सन् 1568 ई. में उनका देहान्त हो गया। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं- हरिश्चंद्र उपाख्यान, भक्तिप्रदीप, रुक्मिणीहरण, कीर्तनघोष, अजामिलोपाख्यान, अमृतमंथन, आदिदशम, कुरुक्षेत्र, गुणमाला, भक्तिरत्नाक, विप्रपत्नीप्रसाद, कालिदमनयात्रा, केलिगोपाल, रुक्मिणीहरण नाटक, पारिजात हरण, रामविजय आदि । शंकरदेव के वैष्णव संप्रदाय का मत एकशरण है। इस धर्म में मूर्तिपूजा को महत्त्व नहीं दिया गया है। इसे केवलीया या महापुरुषीया धर्म भी कहते हैं । उन्होंने मूर्तिपूजा के बदले भगवान के नाम को अधिक महत्त्व दिया है इसलिए नामघरों में मूर्तिपूजा नहीं होती। श्रीमंत शंकरदेव ने असम के लोगों को अशिक्षा और अंधविश्वास से दूर रहने की शिक्षा दी और ज्ञान का सच्चा स्वरूप दिखाया । आज भी असम के नामघरों में मणिकूट (गुरू आसन) पर शंकरदेव रचित कीर्तन घोषा श्रीमद्‌भागवत की प्रति रखी जाती है और उसकी पूजा की जाती है। यह पद्धति सिख मत के समान है जहां गुरुग्रंथ साहिब को श्रेष्ठ माना जाता है। शंकरदेव ने भाओना अर्थात पौराणिक नाटकों के अभिनय और नृत्य-संगीत के द्वारा धर्म प्रचार किया । इसलिए उनके अनुयायी उनके पथ पर चलते हुए भाव नृत्य और धार्मिक नाटक करते हैं। असमिया असम की प्रमुख भाषा है । यहाँ बांग्लाव और हिन्दी भी बोली जाती है । इनके अतिरिक्त राज्य की अन्य भाषाएँ हैं- बोड़ो, कार्बी, मिसिंग, राभा, मीरी आदि ।

त्रिपुरा नाम के संबंध में विद्वानों में मत भिन्नता है । इसकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक मिथक और आख्यान प्रचलित हैं । कहा जाता है कि राधाकिशोरपुर की देवी त्रिपुर सुंदरी के नाम पर त्रिपुरा का नामकरण हुआ । एक अन्य मत है कि तीन नगरों की भूमि होने के कारण त्रिपुरा नाम ख्यालत हुआ । विद्वानों के एक वर्ग की मान्यता है कि मिथकीय सम्राट त्रिपुर का राज्य होने के कारण इसे त्रिपुरा का अभिधान दिया गया । कुछ विद्वानों का अभिमत है कि दो जनजातीय शब्द तुई और प्रा के संयोग से यह नाम प्रकाश में आया जिसका शाब्दिक अर्थ है भूमि और जल का मिलन स्थल । त्रिपुरा एक छोटा पर्वतीय प्रदेश है । लगभग 18 आदिवासी समूह त्रिपुरा के समाज को वैविध्यपूर्ण बनाते हैं जिनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं- त्रिपुरी, रियड, नोआतिया, जमातिया, चकमा, हालाम, मग, कुकी, गारो, लुशाई इत्यादि । इस प्रदेश के पास उन्नत सांस्कृतिक विरासत, समृद्ध परंपरा, लोक उत्सव और लोकरंगों का अद्वितीय भंडार है । बंगला और काकबराक इस प्रदेश की प्रमुख भाषाएँ हैं । नागा समाज अनेक आदिवासी समूहों एवं उपजातियों में विभक्त है । नागालैंड की प्रमुख जनजातियां हैं- चाकेसाड, अंगामी, जेलियाड, आओ, सडतम, यिमचुंगर, चाड, सेमा, लोथा, खेमुंगन, रेंगमा, कोन्याक इत्यादि ।

नागालैंड की संपूर्ण आबादी जनजातीय है । प्रत्येक समुदाय वेश-भूषा, भाषा-बोली, रीति-रिवाज और जीवन शैली की दृष्टि से पृथक है लेकिन इतनी भिन्नता के बावजूद नागा समाज में परस्पर भाईचारा और एकता की सुदृढ़ भावना है तथा वे एक-दूसरे की जीवन-शैली का सम्मान करते हैं । नागालैंड में लगभग 30 भाषाएँ बोली जाती हैं । ये भाषाएँ एक-दूसरे से भिन्न हैं । एक गाँव की भाषा पड़ोसी गाँव के लिए अबूझ है । नागा समाज परस्पर विचार विनिमय के लिए नागामीज भाषा का प्रयोग करता है । नागामीज भाषा असमिया, नागा, बांग्ला, हिन्दी और नेपाली का मिश्रण है। नागामीज की न कोई लिपि है न ही सुनिश्चित व्याकरणिक नियम लेकिन नागालैंड की यह संपर्क भाषा बन गई है।

मणिपुर अपने शाब्दिक अर्थ के अनुरूप वास्तव में मणि की भूमि है । इसे देवताओं की रंगशाला कहा जाता है । सदाबहार वन, पर्वत, झील, जलप्रपात आदि इसके नैसर्गिक सौंदर्य में चार चांद लगा देते हैं । अत: इस प्रदेश को भारत का मणिमुकुट कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। यहाँ की लगभग दो-तिहाई भूमि वनाच्छादित है । प्रदेश के पास गौरवशाली अतीत, समृद्ध विरासत और स्वर्णिम संस्कृति है । मणिपुर की प्रमुख भाषा मैतेई है, जिसे मणिपुरी भी कहा जाता है । मैतेई भाषा की अपनी लिपि है-मीतेई-मएक । इसके अतिरिक्त राज्य में 29 बोलियां हैं, जिनमें प्रमुख हैं- तडखुल, भार, पाइते, लुसाई, थडोऊ (कुकी), माओ आदि । इन सभी भाषाओं की वाचिक परंपरा में लोक साहित्य का विशाल भंडार उपलब्ध है । मिजो आदिवासियों की भूमि मिजोरम एक छोटा पर्वतीय प्रदेश है । मिजो का शाब्दिक अर्थ पर्वतवासी है। यह शब्द मि और जो के संयोग से बना है । मि का अर्थ है लोग तथा जो का अर्थ है पर्वत । मिजोरम में मुख्यत: निम्नलिखित समुदायों के लोग निवास करते हैं- राल्तो, पाइते, दुलियन, पोई, सुक्ते, पंखुप, जहाव, फलाई, मोलबेम, ताउते, लखेर, दलाड; खुड. लई, इत्यादि । मिजो इस प्रदेश की मुख्य भाषा है । मेघालय एक छोटा पर्वतीय प्रदेश है । यहाँ की अधिकांश भूमि पर्वत-घाटियों और वनों से आच्छादित है । यहाँ खासी, जयंतिया, गारो तीन प्रमुख आदिवासी समूह रहते हैं । खासी, जयंतिया, गारो और अंग्रेजी प्रदेश की प्रमुख भाषाएँ हैं । अंग्रेजी राज्य की राजभाषा है । प्रदेश की

वाचिक परंपरा में नृत्य, गीत, मिथक, कहावत आदि की समृद्ध विरासत है । तिब्बत, नेपाल, भूटान की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पर अवस्थित सिक्किम एक लघु पर्वतीय प्रदेश है । यह सम्राटों, वीर योद्धाओं और कथा-कहानियों की भूमि के रूप में विख्यात है । पर्वतों से आच्छोदित इस प्रदेश में वनस्पतियों एवं पुष्पों की असंख्य प्रजातियां विद्यमान हैं । सिक्किम की पुष्पाच्छदित हवा सुगंध से सराबोर रहती है । जैव विविधता, पेड़-पौधों की असंख्य प्रजातियां एवं वन्या-जीवों के कारण इस प्रदेश को वनस्पति विज्ञानियों-पुष्पौविज्ञानियों का स्वर्ग कहा जाता है । राज्य में मुख्यत: लेपचा, भूटिया, नेपाली तथा लिंबू समुदाय के लोग रहते हैं । नेपाली, भूटिया, लेपचा तथा लिंबू यहाँ की प्रमुख भाषाएँ हैं, जिनमें से नेपाली को संविधान की अष्टम अनुसूची में शामिल किया गया है ।

अरुणाचल प्रदेश अपने नैसर्गिक सौंदर्य, बहुरंगी संस्कृति, वनाच्छादित पर्वतमालाओं, बहुजातीय समाज, नयनाभिराम वन्य-प्राणियों के कारण देश में विशिष्ट स्थान रखता है । अरुणाचल की सुरभ्य भूमि पर भगवान भास्कर सर्वप्रथम अपनी रश्मि विकीर्ण करते हैं इसलिए इसे उगते हुए सूर्य की भूमि कहा जाता है । यहाँ पच्चीस प्रमुख आदिवासी समूह निवास करते हैं । इन आदिवासियों के रीति-रिवाज, संस्कृति, परंपरा, भाषा, पर्व-उत्सव में पर्याप्त भिन्नता है । इनकी भाषाओं में तो इतनी भिन्नता है कि एक समुदाय की भाषा दूसरे समुदायों के लिए असंप्रेषणीय है । डॉ. ग्रियर्सन ने अरुणाचल की भाषाओं को तिब्बती-बर्मी परिवार का उत्तरी असमिया वर्ग माना है । अरुणाचल की प्रमुख जनजातियाँ हैं- आदी, न्यिशि, आपातानी, मीजी, नोक्ते, वांचो, शेरदुक्पेन, तांग्सा, तागिन,हिल मीरी, मोंपा, सिंहफो, खाम्ती, मिश्मी, आका, खंबा, मिसिंग, देवरी इत्यादि । इन सभी जनजातियों की इसी नाम से अलग-अलग भाषाएँ हैं, परंतु सभी लोग संपर्क भाषा के रूप में हिन्दी का प्रयोग करते हैं । यहाँ शिक्षा की माध्यम भाषा के रूप में हिन्दी का उपयोग किया ही जाता है, केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के कार्यालयों में भी हिन्दी संपर्क भाषा के रूप में महत्ती भूमिका का निर्वाह करती है ।

पूर्वोत्तर भारत के भाषाई वैविध्य के बीच हिन्दी संपर्क भाषा के रूप में विकसित हो गई है । इस क्षेत्र में 220 भाषाएँ हैं और सभी एक दूसरे से भिन्न हैं । नागालैंड की आओ भाषा बोलने वाला व्यक्ति उसी प्रदेश की अंगामी, चाकेसांग अथवा लोथा भाषा नहीं समझ सकता है । इसी प्रकार असम का असमिया भाषाभाषी उसी राज्य में प्रचलित बोड़ो, राभा, कार्बी अथवा मिसिंग भाषा नहीं समझ-बोल सकता है इसलिए हिन्दी पूर्वोत्तर भारत की आवश्यकता बन चुकी है । अपनी सरलता, आंतरिक ऊर्जा और जन-जुड़ाव के बल पर हिन्दी पूर्वोत्तर क्षेत्र में निरंतर विकास के पथ पर अग्रसर है । क्षेत्र के दूरस्थ अंचल तक हिन्दी का पुण्य आलोक विकीर्ण हो चुका है । क्षेत्र की विभिन्न भाषाओं-बोलियों के रूप, शब्द, शैली, वचन-भंगिमा को ग्रहण व आत्मसात करते हुए हिन्दी के विकास का रथ आगे बढ़ रहा है । हिन्दी की विकास-गंगा पूर्वोत्तर के सभी घाटों से गुजरती है एवं सभी घाटों के कंकड़-पत्थर, रेतकण, मिट्टी आदि को समेटते तथा अपनी प्रकृति के अनुरूप उन्हें आकार देते हुए आगे बढ़ रही है । यहाँ की हिन्दी में असमिया का माधुर्य है, बंगला की छौंक है, नेपाली की कोमलता है, मिजो का सौरभ है, बोड़ो, खासी, जयंतिया, गारो का पुष्प-पराग है, आदी,आपातानी, मोंपा की सरलता है । इस क्षेत्र में हिन्दी व्यापार, मनोरंजन, सूचना और जनसंचार की भाषा बन चुकी है । पूर्वोत्तर के सात केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त राज्य के विश्वविद्यालयों में हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन व अनुसंधान की व्यवस्था है । सैकडों छात्र हिन्दी में अध्ययन-अनुसंधान कर रहे हैं, यहाँ के सैकड़ों मूल निवासी हिन्दी का प्राध्यापन कर रहे हैं । पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है ।

-वीरेन्द्र परमार
केन्द्रीय भूमि जल बोर्ड, फरीदाबाद में
उपनिदेशक (राजभाषा) के पद पर कार्यरत हैं ।

पृष्ठ संख्या 23 का शेष

प्रयोग मनोरंजन के लिए भी किया है। परन्तु अब भी ऐसी कई लोकगाथाएँ मौजूद हैं जो केवल लोककंठ में ही सुरक्षित हैं।

संदर्भ :

१. फणीश्वरनाथ 'रेणु' के उपन्यासों में लोक-संस्कृति; पृ.- 87.

२. आची यो: लोकगाथा को डॉ. जोराम आनिया ताना की पुस्तक 'अरुणाचल प्रदेश न्यीशी लोकगीत सांस्कृतिक अध्ययन' से लिया गया है; पृष्ठ- 147.

३. आबू तान्यी ग न्यीहङ चङा लोईङ तामङ , यह न्यीशी लोकगाथाएँ श्रीमान् हारी जी द्वारा वर्णित हैं, जिन्हें उनके साथ साक्षात्कार द्वारा रिकार्ड किया गया है।

४. अरुणाचल की गालो जनजाति का होलिकोत्सव : मोपिन; भाषा, संस्कृति और साहित्य; पृ.-120.डॉ. अमरनाथ; हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली; पृ. 180.

५. डॉ. हरीशकुमार शर्मा; भाषा संस्कृति और साहित्य; पृ. 80. आतू गुङते आयू गामरू: यह लोकगाथा श्री नङराम पेङकाप जी के माइथोलोजी ऑफ लोङते फेस्टीवल; 21 अप्रैल 2012 को प्रकाशित 'अरुणाचल टाइम्स' समाचारपत्र से.

६. लोक-साहित्य के संदर्भ में असमिया लोकगीतों की प्रकृति के प्रति संवेदना; पूर्वोत्तर राज्यों का लोक-साहित्य; पृ.- 44.

७. कूबूङ पता ङाम तान्यी ग न्यीहङ हङनङ तथा

८. दरिङ दूगू लोईङ तामङने- यह दोनों न्यीशी लोकगाथाएँ श्रीमान हारी जी द्वारा वर्णित हैं जो उनके साथ साक्षात्कार द्वारा रिकार्ड की गयी हैं।

-डॉ. ङूरी शांति
प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
देरा नातुङ शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर

भूमण्डलीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी की चुनौतियाँ और संभावनाएँ

माया महा ठगिनी हम जानी।
तिरंगु फांस लिए कर डोलै बोलै माधुरी बानी।

महाकवि कबीर दास ने बहुत पहले ही इस बाजार रूपी माया के बारे में कह दिया था कि यह माया ब्रह्मा, विष्णु किसी को नहीं छोड़ती। कहने का आशय यह है कि जिसने अपनी इच्छा को अपने वश में कर लिया वही इस पर अंकुश लगा सकता है। यही बात पाश्चात् विद्वान ज्यां वोद्रिया भी कहते हैं- भूमण्डलीकरण का वर्तमान चरण अपने पुराने साम्राज्यवाद के पर्याय और विस्तार का नहीं कहा जा सकता है। आज नए भूमण्डलीकण के युग में विश्व व्यापार संगठन में प्रत्येक राष्ट्र का एक बराबर का अधिकार है। यही विश्व व्यापार है, जाहिर है कि बाजार में सब बराबर नहीं होते, लेकिन यह एक नई स्पर्धा का अवसर भी है। आज तकनीकी हिन्दी की सूचना, संचार की व्यवस्थात्मक बराबरी की प्रक्रिया की जगह को और बढ़ावा दिया है। यद्यपि इसमें वर्चस्व की प्रक्रिया और भी जटिल हो गई है। इस प्रकार की जटिलता का होना साम्राज्यवाद का पर्याय नहीं कहा जा सकता है। अब भूमण्डलीकरण का नया दौर शुरु हो गया है जिसमें हिन्दी ने समय के बाजारवादी चेतना को लेकर व्यक्ति के भीतर झाँकने का एक सबल प्रयास किया है। हिन्दी ने जिस प्रकार से समाज की इच्छाओं और आकांक्षाओं के जो सामाजिक मूल्य पाठकों तक पहुँचाए हैं उसकी सराहना भी की जानी चाहिए परंतु उसका समग्र मूल्यांकन और स्वास्थ्य चेतना का विस्तार कैसा हो रहा है। आज इस मूल्यांकन की अपेक्षा है। आज हिन्दी की जनमानस भाषा होने के कारण ही बाजार की व व्यापार अथवा व्यवसाय की भाषा भी हिन्दी बन गई है। व्यापार की भाषा वही होती है जो आम जनमानस की भाषा होती है जो उपभोक्तता की भाषा होती है। आज कोई विदेशी कंपनी एशिया में हिन्दी जाने बिना व्यापार नहीं कर सकती। इसलिए वह अपने उत्पाद के प्रचार व प्रसार के लिए पैकिंग व गुणवत्ता के लिए कम्पनियों को हिन्दी जानना व अपनाना उनकी व्यवस्था व विवशता है। यही विवशता हिन्दी की शक्ति और सामर्थ की परिचारक है। सम्भवत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी, हिंदूई, हिन्दवी, खड़ी बोली और हिन्दुस्तानी भाषा से लेकर हिंगलिश तक की यात्रा से आगे उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आज हिन्दी समस्त भूमंडल में जनभाषा व विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है। अंतर्वस्तु की दृष्टि से हिन्दी भाषा का वर्तमान व्यावसायिकता के विरुद्ध टकराने, अनुकूलित करने और उससे अपने अस्मिता को बचाये रखने का काल है। यह वह काल है जब भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, उत्तर आधुनिकतावाद तथा नवउपनिवेशवाद की अपनी प्रचंडता चरम पर है। यह परम्पराओं व रीतियों, विचार धाराओं, मान्यताओं तथा विदेशी मूल्यों के चातुर्दिक विध्वंश का समय है।

आज हिन्दी भाषा की गूंज सम्पूर्ण विश्व में है। व्यापार की दृष्टि से, साहित्यिक दृष्टि से, अध्ययन की दृष्टि से, वेब मीडिया आदि की दृष्टि से हिन्दी विश्व में गौरवपूर्ण स्थान बना चुकी है। हिन्दी को विश्व पटल पर विराजमान करने में अनेक व्यक्तियों, सरकारी-निजी संस्थाओं, सूचना प्रौद्योगिकी, सिनेमा, कंप्यूटर, इंटरनेट, रेडियो, कवि सम्मेलनों इत्यादि का प्रयास अत्यंत सराहनीय है। हिन्दी भाषा साहित्य की अनेक सृजनात्मक विधाओं से समृद्ध है। यह भाषा न केवल भारत में वरन् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी पहचान बनाने में काफी हद तक कामयाब हुई है। हिन्दी की अंतर्राष्ट्रीयता का संकल्प है प्रवासी साहित्य। हिन्दी के प्रवासी साहित्य का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। परंतु इसके विषयवस्तु के स्पष्टीकरण में जहां व्यापक फलक उपलब्ध होगा, वहीं उन कारकों की जानकारी भी मिल सकेगी, जिनसे सांस्कृतिक सहयोग कर हिन्दी में प्रवासी साहित्य का सृजनात्मक लेकिन आज अपनी पहचान पा रहा है। साहित्य की पहचान का एक अलग सोपान इंटरनेट पर प्रवासी हिन्दी साहित्य भी है। इस तरह आज विश्व में हिन्दी का नया चेहरा सामने आया है। जयंती प्रसाद नौटियाल के अनुसार- विश्व में हिन्दी जानने वालों की संख्या, एक अरब दो करोड़ पच्चीस लाख दस हजार छह सौ पंद्रह है। जबकि चीनी जानने वालों की संख्या नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ पंद्रह है। भारत में इसे बोलने व समझने वाले अस्सी करोड़ पचास लाख इकहत्तर हजार चार सौ सड़सठ लोग हैं। इन्होंने अपने शोध-अध्ययन से यह प्रमाणित कर दिया है कि विश्व में सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा हिन्दी ही है, न कि चीनी। हरमहेंद्र सिंह वेदी के अनुसार- वैश्वीकरण के इस दौर में हिन्दी बहुत बड़ी भूमिका निभाने जा रही है। यह भूमिका सार्क देशों की एक मात्र भाषा बनकर उभरने में छिपी हुई है। सार्क देश अन्तर्राष्ट्रीय किसी एक भाषा पर भविष्य में निर्भर कर सकते हैं तो वह हिन्दी ही होगी। क्योंकि बांग्लादेश, भूटान, नेपाल, श्रीलंका व पाकिस्तान इस भाषा को सहज में ही अपना सकते हैं।

डॉ. दिग्विजय शर्मा

किसी भी राष्ट्र के लिए यह गौरव की बात है कि उसकी भाषा का विदेशों में भी अध्ययन-अध्यापन किया जा रहा है। भारत ऐसा ही गौरवशाली राष्ट्र है। आज हिन्दी केवल भारत में ही नहीं पढ़ी या पढ़ाई जाती वरन् विदेशी भी इसके अध्ययन-अध्यापन में रत हैं। आज विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर अनुसंधान स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था है। इतना ही नहीं भारत के हिन्दी प्रदेशों को छोड़कर यह विश्व का पहला देश है जहां हिन्दी भाषा और साहित्य का व्यापक आधार पर अध्ययन, अनुवाद और अनुसंधान कार्य चल रहा है। साहित्य की दृष्टि से देखा जाए तो

विश्व के देशों में सर्वाधिक पाठ्य हिन्दी साहित्य के हैं। सबसे ज्यादा कहानी, कविता, नाटक, संस्मरण एवं ज्ञान-विज्ञान की किताबें हिन्दी भाषा में ही छपती हैं। आज हिन्दी भाषा एवं साहित्य की गरिमा को आलोकित करने के लिए पाँच सौ से अधिक पत्र-पत्रिकायें छप रही हैं। विभिन्न विषयों पर हिन्दी में रोज लगभग पचास किताबें छप कर बाजार में आ जाती हैं। दुनिया का कोई ऐसा विषय नहीं है जिस पर हिन्दी भाषा में दो चार मानक पुस्तकें उपलब्ध न हों। फिजियन-हिन्दी शब्दकाषों, रूसी-हिन्दी शब्दकोषों, जापानी-हिन्दी शब्दकोषों इसी प्रकार के अन्य शब्दकोषों का प्रकाशित होना यह सिद्ध करता है कि दूर के देशों में भी हिन्दी का प्रचार-प्रसार बढ़ा है। नीदरलैंड से 'हिन्दी प्रचार पत्रिका' का प्रकाशित होना, ब्रिटेन हिन्दी प्रचार परिषद द्वारा 'प्रवासिनी', 'पुरवाई' पत्रिका, मॉरीशस से 'जनता', 'विश्व हिन्दी पत्रिका', 'बसंत', 'आथर्वेद', अमेरिका से 'सौरभ', 'विश्व विवेक', नार्वे से 'शांतिदूत', 'दर्पण' हिन्दी के वैश्विक रूप को स्पष्ट करता है। आज शीर्ष के दस अखबारों की सूची में अंग्रेजी के नहीं हिन्दी के अखबार हैं। आज के सर्वाधिक लोकप्रिय लेखक हैरी पॉटर की पुस्तकों की प्रतियाँ तुलसी दास की अमर कृति 'रामचरित मानस' की तुलना में कम मात्रा में बिकी हैं।

अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान सैमुअल कैलाग द्वारा हिन्दी का प्रथम व्याकरण लिखना, श्री ग्राहम बेली द्वारा इसका संपादन एवं संशोधन कर प्रकाशित करवाना, इस में अनेक भारतीय लेखकों की कृतियों, गद्य एवं पद्य का अनुवाद होना, लियो टॉलस्टॉय का महाभारत के गीता अंश का अपनी डायरी और पत्रों में उल्लेख करना, बी.आई. बालिन की पुस्तक 'उपन्यासकार प्रेमचंद', दिम्शित्स का हिन्दी-व्याकरण पर शोध कार्य, इंग्लैंड के कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से संबंद्ध, आलचिन द्वारा तुलसी की 'विनय पत्रिका' और 'कवितावली' पर किया गद्य कार्य, वारान्निकोव द्वारा 'रामचरित मानस' का अनुवाद अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी की समृद्ध परम्परा का द्योतक है। आज भी विदेशी विद्वानों द्वारा हिन्दी भाषा में साहित्य सर्जन हिन्दी की विश्व व्यापकता को सिद्ध करता है। हिन्दी के समसामयिक विदेशी विद्वानों में एक प्रमुख नाम है- हंगरी की मारिया नेज्यैशी का, जिन्हें लेखिका पूर्णिमा वर्मन 'हंगरी में हिन्दी की गंगोत्री' कहती हैं। डॉ- मारिया नेज्यैशी हिन्दी में पीएच.डी. कर हंगरी में बुडापेस्ट के एल्ते विश्वविद्यालय के भारत-विद्या विभाग में हिन्दी की वरिष्ठ रीडर हैं। आज उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप हंगरी में डेढ़ हजार से अधिक लोग हिन्दी जानते हैं। यह संख्या प्रतिवर्ग बढ़ती जा रही है। मारिया जी को हंगरी में हिन्दी के विकास के उत्कृष्ट कार्यों के लिए केंद्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा 2002 ई. में जार्ज ग्रियर्सन पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

जापान में प्रो. कात्सुरो कोगा हिन्दी शिक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निर्वाह कर रहे हैं। उनके द्वारा दो वृहद् शब्दकोष (जापानी-हिन्दी शब्दकोष) हिन्दी-जापानी शब्दकोष, जापानी और हिन्दी भाषाओं के बीच ही नहीं बल्कि भारत और जापान के बीच भी शैक्षिक, सांस्कृतिक सेतु का काम कर रहे हैं। हाल ही में देश के प्रधान मंत्री श्री मोदी जी द्वारा जापान में जाकर सभी संबंधों को मजबूत करना व वहां की जनता को मंत्रमुग्ध करना हिन्दी के लिए एक नये समीकरण का संकेत देता है। कोगा जी की हिन्दी व्याकरण समावेशी व हिन्दी व्याकरण संबंधी अन्य रचनाएं जापानी में रचित हैं। महात्मा गांधी, रामप्रसाद बिस्मिल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथाओं का व उत्तर भारत की अन्य पुस्तकों का कोगा जी ने हिन्दी से जापानी में अनुवाद भी किया है। इंग्लैंड में उमा वर्मा, विद्या माथुर, गौतम सचदेव, उमा राजीव सक्सेना, कादम्बरी मेहरा, अरुणा सब्बरवाल, अचला शर्मा, शैल अग्रवाल, सलमा जैदी, वंदना शर्मा, तेजेन्द्र शर्मा व अन्य हिन्दी कथा-साहित्य द्वारा विश्व में हिन्दी का परचम लहराये हुए हैं। अमेरिका में विशाखा ठक्कर, राजश्री, अंशु जौहरी, डॉ. सुशे, इला प्रसाद, सौमित्र सक्सेना, पुष्पा सक्सेना, प्रतिभा सक्सेना आदि। नीदरलैंड में डॉ. तेयो दम्स्त्यै, डॉ. डिक पल्कर और डॉ. अनैत फॉन द हुक हिन्दी के प्रचार-प्रसार निमित्त सक्रिय हैं। फिजी में प्रो. सुब्रहमण्यम, जोगेन्द्र सिंह कंवल, कमला प्रसाद मिश्र, रामनारायन, डेनमार्क में अर्चना पेन्यूली, न्यूजीलैंड में महेश चंद्र विनोद हिन्दी में साहित्य सर्जन कर हिन्दी को विश्व फलक पर विराजमान किए हुए हैं।

मॉरीशस के गांधी शिवसागर राम गुलाम ने प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन नागपुर में कहा था- हिन्दी को विश्व भाषा बनाने का काम हमारे उन लोगों ने किया जो दूसरे देशों में दास बनकर गये। वे अप्रवासी भारतीय यह अच्छी तरह जानते हैं कि रोजगार के लिए अंग्रेजी भाषा अनिवार्य है, लेकिन अपने समाज और उसकी संस्कृति से जुड़े रहने के लिए, आत्मसम्मान को बरकरार रखने के लिए अपनी मातृभाषा हिन्दी से जुड़े रहना भी अपरिहार्य है। अप्रवासी भारतीय अपनी भाषा को लेकर भारत में रह रहे भारतीयों से अधिक जागरुक हैं और चिंतित भी। इसीलिए अप्रवासी भारतीय हिन्दी की अस्मिता और उसकी प्रतिष्ठा के प्रति निरंतर प्रयासरत हैं। इसी का परिणाम है कि आज विश्व में हिन्दी अपनी पहचान बना चुकी है। फिजी, सूरीनाम, मॉरीशस, गुयाना, ट्रिनीडाड बहुत से ऐसे देशों में अप्रवासी भारतीयों के द्वारा हिन्दी का प्रयोग किया जा रहा है। विश्व में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां अप्रवासी भारतीय न हों और वहां हिन्दी भाषा विद्यमान न हो। साथ ही यह उद्घोष भी कर रहे हैं कि साहित्य उस भाषा में रचा जा सकता है जो लेखक की धमनियों में बहती हो। अप्रवासी साहित्यकारों की श्रेणी में अभिमन्यु अनत जिन्होंने मॉरीशस के उत्तर प्रांत के त्रियेल गाँव में 18 वर्षो तक हिन्दी में अध्यापन कार्य किया, इनका चर्चित उपन्यास है 'लाल पसीना'। हिन्दी के विद्वान इन्हें मॉरीशस का प्रेमचंद भी कहते हैं।

आज हिन्दी विश्व में एक वृहद् रूप धारण कर रही है तो उसमें हिन्दीतर भाषी लोगों का व भारत सरकार, उपक्रमों का विशेष योगदान रहा है। भारत सरकार की ओर से यूरोप के देशों में एक भारतीय हिन्दी-प्रोफेसर हिन्दी-अध्यापन के लिए भेजा जाता है।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने भी हिन्दी प्रचार-प्रसार के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी सम्मेलन का आयोजन आरम्भ कर दिया है। जीवन बीमा से संबंधित अनेक उपक्रम अधिकांशत: कार्य हिन्दी में ही कर रहे हैं। हमारे बैंक भी हिन्दी भाषा के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अनेक बुक ट्रस्ट अपने साहित्यिक पुस्तकें प्रकाशित करके विश्व में हिन्दी की भागीरथी प्रवाहित कर रहे हैं। उनका प्रयास सराहनीय है।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हिन्दी निरंतर बढ़ रही है। हमारे पास हिन्दी कोष विकीपीडिया उपलब्ध है। अंग्रेजी की तरह गूगल पर हिन्दी में विभिन्न विषयों पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकों के विषय में जानकारी उपलब्ध हो जाती है। वर्तमान में हिन्दी भाषी (करोड़ों की आबादी) कंप्यूटर का प्रयोग अपनी भाषा में कर सकते हैं। आज संसार में कंप्यूटर टाइपिंग के सर्वाधिक फॉन्ट हिन्दी में ही हैं। आज बहुत से सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं जो हिन्दी भाषा में कंप्यूटर पर कार्य को आसान बनाते हैं। अत: आज हम इंटरनेट पर आसानी से हिन्दी में काम कर सकते हैं। इस प्रकार हिन्दी ने अपने बलबूते इलैक्ट्रॉनिक मीडिया तथा कंप्यूटर की भाषा के रूप में स्वीकार्य स्थान बना लिया है। बॉलीवुड के कारण हिन्दी आज विश्व मंच पर पहुँच गई है। हिन्दी गानों की यह सशक्त विधा अमेरिका में भाषा-शिक्षण के पाठ्यक्रमों में अधिक प्रभाव के साथ उभरी है। विदेशों में हिन्दी के बढ़ते प्रयोग के लिए हिन्दी सिनेमा और हिन्दी दूरदर्शन व वीडियो टैक्नोलॉजी का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय है। जहां एक ओर हिन्दी सिनेमा विदेशों में हिन्दी ज्ञानवर्धन में सहायक हुआ है वहीं दूसरी ओर हिन्दी भाषा के कारण ही बाजार भी लाभदायक रहा। आज सभी चैनल तथा फिल्म निर्माता अंग्रेजी कार्यक्रमों और फिल्मों को हिन्दी में डब करके प्रस्तुत करने लगे हैं।

आकाशवाणी रेडियो प्रसारण से भी हिन्दी विश्व के कोने-कोने तक पहुँची है। इंग्लैंड के सुविख्यात प्रसारण संगठन 'बी. बी.सी.' लंदन से हिन्दी प्रसारण पहली बार 11 मई 1940 को हुआ था। जर्मनी के प्रसारण संगठन 'डायचे वेले' से हिन्दी में 15 अगस्त 1964 से प्रत्येक दिन 45 मिनट का रेडियो कार्यक्रम प्रसारित होता है। एन.एच.के. वर्ल्ड रेडियो, जापान की हिन्दी सेवा 1 जून 1940 को शुरू हुई। चीन के 'सी.आर.आई.' से 15 मार्च 1959 में हिन्दी प्रसारण की शुरुआत हुई। रूस की राजकीय रेडियो कंपनी 'दि वाइस ऑफ एशिया' यानी रेडियो रूस की हिन्दी सेवा प्रतिदिन दो सभाओं में कुछ डेढ़ घंटे के हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित करती है। ईरान की प्रसारण संस्था आई.आर.आई.बी. की रेडियो तेहरान के नाम से हिन्दी सेवा है। इस प्रकार आज मीडिया और संचार जगत के माध्यम से विश्वव्यापी बाजार में सर्वोच्च स्थान बनाये हुए हैं। विदेशों में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भूमिका हिन्दी फिल्मों की रही है वैसी ही भूमिका कवि सम्मेलनों की भी रही है। सन् 1980 ई. में डॉ. कुंवर चंद्र प्रकाश सिंह ने अमेरिका में अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति द्वारा 1 जुलाई 1983 को पहला कवि सम्मेलन हुआ। 2010 में उत्तरी अमेरिका में 16 कवि सम्मेलन करवाये गये। इन सम्मेलनों में स्वस्थ मनोरंजन के साथ-साथ भाषा को सुनने-समझने की शक्ति सहज रूप से स्वत: पुष्ट होती है। यह अप्रवासी भारतीयों की युवा पीढ़ी के अवचेतन में हिन्दी के प्रति प्रेम को जाग्रत करने में सहायक सिद्ध होती है। वर्तमान स्थिति से यह ज्ञात होता है कि हिन्दी में प्रयोक्ताजन्य साहित्य बड़ी तेजी से वेब दुनिया के माध्यम से साइबर स्पेस में विचरण कर रहा है और भारत की विश्व पटल पर बढ़ती साख ने हिन्दी की बिंदी का परचम ऊंचा रखने में बहुत मदद की है। भारत के बाहर (विदेश में) लोग काफी साहित्य लिखते हैं। अब जब तकनीक के विकास के चलते अधिकतर रचनाकार इस साहित्य को इंटरनेट पर अपलोड कर देते हैं, इससे हिन्दी के विकास में एक नया आयाम आ जुड़ा है। इससे हिन्दी अपने वैश्वीकरण का रूप धारण कर सबके सामने आई है।

अनेक भारतीय ऐसे हैं जो भारत से अलग देशों में हिन्दी रचना व विकास के काम में लगे हुए हैं। इनमें दूतावास के अधिकारी और विदेशी विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों के अलावा सामान्य जन भी हैं जो नियमित लेखन व अध्यापन से विदेश में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने के काम में लगे हैं। विदेश में रहने वाले हिन्दी साहित्यकारों का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि उनकी रचनाओं में अलग-अलग देशों की विभिन्न परिस्थितियों के साथ हिन्दी के विकास का नया मौका मिलता है और इस प्रकार हिन्दी साहित्य का अंतर्राष्ट्रीयकरण होता है। समस्त विश्व हिन्दी भाषा के विस्तार में योगदान कर पाता है। बीसवीं सदी के मध्य से भारत छोड़कर विदेश जा बसने वाले लोगों की संख्या में काफी वृद्धि हुई है। इनमें से अनेक लोग हिन्दी के विद्वान थे और भारत छोड़ने से पहले ही लेखन में लगे हुए थे। ऐसे लेखक अपने-अपने देश में चुपचाप लेखन में लगे थे। बीसवीं सदी का अंत होते-होते लगभग 100 प्रवासी भारतीय अलग-अलग देशों में अलग-अलग विधाओं में साहित्य रचना कर रहे थे। इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ होने तक पचास से भी अधिक साहित्यकार भारत में अपनी पुस्तकें प्रकाशित करवा चुके थे और इंटरनेट पर इनकी तादाद यकीनन ज्यादा थी। इंटरनेट पर हिन्दी पत्रिकाओं का विकास हुआ तो ऐसे साहित्यकारों को एक खुला मंच मिल गया और विश्वव्यापी पाठकों तक पहुंचने का सीधा रास्ता भी। 'अभिव्यक्ति', 'अनुभूति' और 'लेखनी' जैसी पत्रिकाओं में ऐसे साहित्यकारों की सूची देखी जा सकती है, जिसमें प्रवासी साहित्यकारों के साहित्य को रखा गया है। ऐसे साहित्यकारों में पूर्णिमा वर्मन और शैल अग्रवाल जैसी हस्तियों का नाम सबसे पहले आता है।

10 जनवरी 2003 से हर वर्ष प्रवासी दिवस मनाया जाना इस बात की ओर संकेत करता है कि भारत में रह रहा एक वर्ग प्रवासियों के इस हिन्दी साहित्य को सम्मान देने को आतुर है। प्रवासी हिन्दी उत्सव में ऐसे लोगों को रेखांकित करने और प्रोत्साहित करने के काम की ओर भारत की केंद्रीय और प्रादेशिक सरकारों तथा

स्वैच्छिक संस्थाओं ने रुचि ली, जो विदेश में रहते हुए हिन्दी में साहित्य रच रहे थे। भारत की प्रमुख पत्रिकाओं जैसे 'वागर्थ', 'भाषा' और 'वर्तमान साहित्य' ने भी प्रवासी विशेषांक प्रकाशित करके इन साहित्यकारों को भारतीय साहित्य की प्रमुख धारा से जोड़ने का काम किया है। इस तरह इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में आधुनिक साहित्य के अंतर्गत प्रवासी हिन्दी साहित्य के नाम से एक नए युग का प्रारंभ हुआ। हिन्दी साहित्य अपने आप में एक गंभीर साहित्य है क्योंकि इसकी रचना साहित्यकार द्वारा धन उपार्जन हेतु नहीं की जाती वरन स्वयं को संतुष्ट करने हेतु की जाती है। यह साहित्य ही हिन्दी भाषा के लिए एक वरदान है। पिछले तीन-चार दशकों में तकनीक के क्षेत्र में विश्व में बड़ी तेजी से बदलाव आया है और इस बदलाव ने हिन्दी साहित्य के विकास में अमूल्य योगदान दिया। भूमंडलीकरण के इस युग में इंटरनेट के माध्यम से हिन्दी का विकास उल्लेखनीय है। बीबीसी हिन्दी के लिए लिखे एक लेख में अरुण अस्थाना ने कहा है कि- 'हिन्दी साहित्य को इन दिनों अपने पाठक बढ़ाने या नए पाठक बनाने का एक नया जरिया मिल गया है। देश और काल की सीमाओं से परे, ये जरिया है- इंटरनेट ।'

डॉ. कमल किशोर गोयनका के अनुसार 21वीं सदी में मॉरीशस के साथ अमेरिका, कनाडा, नार्वे, इंग्लैंड, नीदरलैंड, आबूधाबी आदि देश भी हिन्दी साहित्य रचनाओं में प्रमुख रूप से शामिल हो गये हैं। विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य का विस्तार हो रहा है। उसका एक संसार बन चुका है, बस उसमें अब नई पीढ़ी को लाने की आवश्यकता है। हिन्दी पोर्टल 'वेब दुनिया' के प्रधान संपादक रविन्द्र शाह कहते हैं कि साहित्य इंटरनेट पर आए लोगों को उससे जोड़े रखने की भूमिका निभाता है और निभा रहा है। संभवत: इंटरनेट ही ऐसा करने वाला एक सशक्त माध्यम हो सकता है। महात्मा गांधी ने 'विश्वग्राम' का सपना देखते हुए कहा था- 'मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों ओर दीवारों से घिरा रहे। न मैं अपनी खिड़कियों को ही कसकर बंद रखना चाहता हूं। मैं तो सभी देशों की संस्कृति की हवाओं का अपने घर में बेरोक टोक संचार चाहता हूं।' अपनी सारी भौगोलिक सीमायें तोड़कर 'विश्वग्राम' को साकार स्वरूप देकर हिन्दी साहित्य व संस्कृति अपना सौम्य रूप दिखाने पर बाध्य है।

इंटरनेट पर हिन्दी एक सशक्त भाषा बनकर उभर रही है। यह अब भी भारतीयों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। न्यूजीलैंड से 1996 में सबसे पहले हिन्दी ई-मैग्जीन साइबर स्पेस में आईं और 2000-2001 में संयुक्त अरब अमीरात से 'अभिव्यक्ति' और 'अनुभूति' नामक ई-मैग्जीन इंटरनेट पर आईं। सबसे बड़ी बात यह है कि ये पत्रिकाएं आज भी निरंतरता बनाए हुए हैं। इंटरनेट की गतिशीलता साहित्य को समय की सीमाओं से अलग ले जाकर लेखक और पाठक के बीच त्वरितता प्रदान करती है। विदेश में लिखी गई हिन्दी इंटरनेट के माध्यम से तत्काल पढ़ी जा सकती हैं। वर्तमान भारत में लेखनी पर बाजारवाद हावी हो रहा है। भाषा एक बहते दरिया के समान होती है, वह जिस-जिस क्षेत्र से गुजरती है, उस क्षेत्र के निशान अपने साथ ले जाती है। यही कारण है कि भाषा को भी तकनीक के साथ बहने देने में कुछ विद्वानों को उसके स्वरूप बिगड़ने का डर सताने लगता है। उसे केवल विद्वानों, प्रकाशकों के पैमाने में न रखा जाए तभी वह स्वच्छंद धारा से बहकर अपने चरमोत्कर्ष को ग्रहण कर सकेगी। हिन्दी साहित्य ने समय के बाजारवादी चेतना का आधार लेकर व्यक्ति के भीतर झांकने का सफल प्रयास किया है। हिन्दी ने जिस प्रकार से समाज की इच्छाएं, आकांक्षाएं, सामाजिक मूल्य पाठक तक पहुंचाए हैं उसकी सराहना भी की जानी चाहिए पर उसका समग्र मूल्यांकन और स्वस्थ चेतना का विस्तार कैसा रहा है, आज इसके मूल्यांकन की अपेक्षा है। आज हिन्दी जनमानस की भाषा होने के कारण ही बाजार की और व्यापार व व्यवसाय की भाषा भी बन गई है। व्यापार की भाषा वही होती है जो आम जनमानस की भाषा होती है, जो उपभोक्ता की भाषा होती है। आज कोई भी विदेशी कंपनी एशिया में हिन्दी जाने बिना व्यापार नहीं कर सकती। इसलिए अपने उत्पाद के प्रचार-प्रसार के लिए, पैकिंग व गुणवत्ता के लिए कंपनियों को हिन्दी जानना व अपनाना उनकी विवशता है और यही विवशता हिन्दी की शक्ति व सामर्थ्य की परिचायक है। अत: यह कहा जा सकता है कि हिन्दी 'हिंदुई', 'हिंदवी', 'खड़ी बोली', 'हिन्दुस्तानी' से लेकर 'हिंग्लिश' तक की यात्रा से आगे उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आज जनभाषा व विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है।

संदर्भ-

1) भाषा शोध अध्ययन, जयंती प्रसाद नौटियाल 2005

2) मॉरीशस की हिन्दी कथा यात्रा, विनोदबाला अरुण, 1997

3) प्रवास में, उषा राजे सक्सेना, 2002

4) हिन्दी प्रवासी साहित्य, कमल किशोर गोयनका, 2011

5) सुषमा बेदी के कथा साहित्य में प्रवासी भारतीय समाज के विभिन्न पद्य, डॉ. गुरप्रीत, 2010

6) प्रवासी भारतीय और हिन्दी : कुछ सुझाव, अभिव्यक्ति, प्रो. हरिशंकर आदेश

7) प्रवासी हिन्दी साहित्य में परम्परा, जड़ें और देशभक्ति-अभिव्यक्ति, मनोज श्रीवास्तव 2011

8) प्रवासियों में हिन्दी साहित्य : दशा और दिशा, अभिव्यक्ति, सुषमा बेदी 2008

9) इंटरनेट पत्रिकाएं Anubhuti &hindiAorg, Abhivyakti & hindiAorg, bharat Darshan AcoAnz, Sahityakunj Anet, Lekhni Anet, Madhumati, Bhasha.

-डॉ. दिग्विजय शर्मा
केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
हिन्दी संस्थान मार्ग, आगरा-05

पत्तों पर पानी डालने से नहीं, जड़ों को सींचने से बढ़ेगी भारतीय भाषाएँ

अब तक 1287 विद्यालयों के 9 भारतीय भाषाओं के 3370 भाषा शिक्षक एवं 33,335 छात्र हो चुके हैं सम्मानित।

वर्तमान समय में भारतीय भाषाएँ अपने जीवन के सबसे गंभीर संकट के दौर से गुजर रही हैं और यह संकट उनके अस्तिव और भविष्य का है । भाषा केवल विचारों की अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण का माध्यम ही नहीं, अपितु आत्मगौरव, राष्ट्र गौरव, आत्मसम्मान और राष्ट्र की पहचान का प्रतीक भी है । भाषा किसी भी संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अंग है । विगत के दशकों में हमने 200 से अधिक भारतीय भाषाओं को खो दिया है और इस समय भारत की लगभग 197 भाषाएँ विलुप्त होने के कागार पर हैं । भारत में अभी लगभग 450 जीवित भाषाएँ हैं । हमारे देश की यह समृद्ध भाषाई विरासत गर्व करने योग्य है, किन्तु चिंता की बात यह है कि हमारे देश की 10 भाषाएँ ऐसी हैं जिसके जानकार 100 से भी कम लोग बचे हैं । इन भाषाओं में ज्यादातर भाषाएँ मूल निवासियों द्वारा बोली जाती हैं, किन्तु ये भाषाएँ खतरनाक ढंग से विलुप्त होती जा रही हैं । वहीं 81 भारतीय भाषाओं की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है जिसमें मणिपुरी, बोडो, गढ़वाली, लद्दाखी, मिजो, शेरपा और स्पिति शामिल हैं ।

भारतीय भाषाओं के इन्हीं संकटों को आत्मसात करते हुए वर्ष 2015 में दिल्ली में 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' की स्थापना हुई । श्री सुधाकर पाठक इसके संस्थापक अध्यक्ष हैं। अकादमी किसी सरकारी/गैरसरकारी संस्थान से वित्तीय सहयोग लिए बिना एक स्ववित्तपोषित संस्था के रूप पूर्ण सक्रियता से भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संरक्षण-संवर्धन के लिए कार्य कर रही है । अकादमी का सूक्त वाक्य है 'निजभाषोन्तौ राष्ट्रोन्नति:' जिसका अर्थ है कि अपनी भाषा की उन्नति से ही राष्ट्र की उन्नति सम्भव है । अकादमी की यह यात्रा अनेक अवरोधों को लांघते और नए-नए सोपानों को छूती हुई अनवरत जारी है ।

"पत्तों पर पानी डालने से नहीं, जड़ों को सींचने से बढ़ेगी भारतीय भाषाएँ" इस सूक्त वाक्य के साथ 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' भारतीय भाषाओं की नई पौध को सींचने का कार्य कर रही है । 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' आठवीं अनुसूची में सम्मिलित भारतीय भाषाओं के मेधावी छात्रों और उनके भाषा शिक्षकों को विगत 9 वर्षों से सम्मानित करती आ रही है । इस योजना के अंतर्गत 10वीं कक्षा की परीक्षा में किसी एक भारतीय भाषा (हिन्दी, संस्कृत, पंजाबी, बंगाली, तेलुगु, तमिल, गुजराती, सिन्धी, उर्दू आदि) में 90 प्रतिशत या उससे अधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्रों एवं उन्हें पढ़ाने वाले भाषा शिक्षकों को सम्मानित किया जाता है । शत प्रतिशत (100) अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को 'भाषा रत्न सम्मान', 90 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को 'भाषा दूत सम्मान' तथा उन्हें भारतीय भाषा पढ़ाने वाले शिक्षकों को 'भाषा गौरव शिक्षक सम्मान' से सम्मानित किया जाता है । यह सम्मान योजना दिल्ली-एनसीआर के विद्यालयों के छात्रों एवं शिक्षकों को अपनी भाषा से जोड़ने, प्रोत्साहित करने और अपनी मातृभाषाओं पर गर्वानुभूति कराने के उद्देश्य से प्रत्येक वर्ष आयोजित किया जाता है ।

वर्ष 2022-23 के 'भारतीय भाषा दिवस' के अवसर पर आयोजित 'भारतीय भाषा उत्सव' में मुख्य अतिथि के रूप में पूर्व राष्ट्रपति माननीय श्री रामनाथ कोविंद जी, विशिष्ट अतिथि के रूप में तत्कालीन संस्कृति मंत्री श्रीमती मीनाक्षी लेखी एवं इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार के सदस्य सचिव डॉ.सच्चिदानंद जोशी आदि की गरिमामयी उपस्थिति थी ।

इस सम्मान योजना के अंतर्गत अब तक 1287 विद्यालयों के 3370 भाषा शिक्षकों को एवं 33,335 छात्रों को सम्मानित किया जा चुका है ।

भारत की पहाड़ी भाषाएँ

हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं के दक्षिणवर्ती भू-भाग में कश्मीर के पूर्व से लेकर नेपाल तक पहाड़ी भाषाएँ बोली जाती हैं। ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण करते समय पहाड़ी भाषाओं का एक स्वतंत्र समुदाय माना है। सुनीति कुमार चटर्जी ने इन्हें पैशाची, दरद अथवा खस प्राकृत पर आधारित मानकर मध्यकाल में इनपर राजस्थान की प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं का प्रभाव घोषित किया है। एक नवीन मत के अनुसार कम-से-कम मध्य पहाड़ी भाषाओं का उद्‌गम शौरसेनी प्राकृत है, जो राजस्थानी का मूल भी है।

पहाड़ी भाषाओं के शब्दसमूह, ध्वनिसमूह, व्याकरण आदि पर अनेक जातीय स्तरों की छाप पड़ी है। यक्ष, किन्नर, किरात, नाग, खस, शक, आर्य आदि विभिन्न जातियों की भाषागत विशेषताएँ प्रयत्न करने पर खोजी जा सकती हैं जिनमें अब यहाँ आर्य-आर्येतर तत्व परस्पर घुल मिल गए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसा विदित होता है कि प्राचीन काल में इनका कुछ पृथक् स्वरूप अधिकांश मौखिक था। मध्यकाल में यह भू-भाग राजस्थानी भाषा भाषियों के अधिक संपर्क में आया और आधुनिक काल में आवागमन की सुविधा के कारण हिन्दी भाषाई तत्व यहाँ प्रवेश करते जा रहे हैं। पहाड़ी भाषाओं का व्यवहार एक प्रकार से घरेलू बोलचाल, पत्र-व्यवहार आदि तक ही सीमित हो चला है।

पहाड़ी भाषाओं में दरद भाषाओं की कुछ ध्वन्यात्मक विशेषताएँ मिलती हैं जैसे घोष महाप्राण के स्थान पर अघोष अल्पप्राण ध्वनि हो जाना। पश्चिमी तथा मध्य पहाड़ी प्रदेश का नाम प्राचीन काल में संपादलक्ष था। यहाँ मध्यकाल में गुर्जरों एवं अन्य राजपूत लोगों का आवागमन होता रहा जिसका मुख्य कारण मुसलमानी आक्रमण था। अत: स्थानीय भाषा प्रयोगों में जो अधिकांश 'न' के स्थान पर 'ण' तथा अकारांत शब्दों की ओकारांत प्रवृत्ति लक्षित होती है, वह राजस्थानी प्रभाव का द्योतक है। पूर्वी हिन्दी को भी एकाधिक प्रवृत्तियाँ मध्य पहाड़ी भाषाओं में विद्यमान हैं क्योंकि यहाँ का कत्यूर राजवंश सूर्यवंशी अयोध्या नरेशों से संबंध रखता था। इस आधार पर पहाड़ी भाषाओं का संबंध अर्ध-मागधी-क्षेत्र के साथ भी स्पष्ट हो जाता है।

इनके वर्तमान स्वरूप पर विचार करते हुए दो तत्व मुख्यत: सामने आते हैं। एक तो यह कि पहाड़ी भाषाओं की एकाधिक विशेषता इन्हें हिन्दी भाषा से भिन्न करती हैं। दूसरे कुछ तत्व दोनों के समान हैं। कहीं तो हिन्दी शब्द स्थानीय शब्दों के साथ वैकल्पिक रूप से प्रयुक्त होते हैं और कहीं हिन्दी शब्द ही स्थानीय शब्दों का स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं। खड़ी बोली के माध्यम से कुछ विदेशी शब्द, जैसे 'हजामत', 'अस्पताल', 'फीता', 'सीप', 'डागदर' आदि भी चल पड़े हैं।

पहाड़ी भाषाओं के तीन भेद निर्धारित किए जा सकते हैं : पूर्वी पहाड़ी : इसे नेपाली अथवा 'खसकुरा' भी कहते हैं। 'गोर्खाली' इसी के अंतर्गत है। इसमें लिखित साहित्य पर्याप्त है।

शैलेन्द्र चौहान

मध्य पहाड़ी : ये कुमाऊँ एवं गढ़वाल में बोली जाती हैं अत: इसी आधार पर 'कुमाउँनी' तथा 'गढ़वाली' के नाम से भी प्रसिद्ध है। उत्तराखंड के 11 पार्वत्य जिले इनके क्षेत्र हैं और इन्हें बोलनेवालों की संख्या लगभग 16 लाख है।कुमाउँनी भाषा जिला नैनीताल, अल्मोड़ा तथा पिथौरागढ़ में प्रयुक्त होती है। इसका क्षेत्र इस समय लगभग 8000 वर्गमील में विस्तृत है तथा सन् 1951 की जनगणना के अनुसार इसे बोलने वालों की संख्या लगभग 570,008 है। हिन्दी द्वितीय भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। इस कारण कुमाउँनी हिन्दी खड़ी बोली के अत्यधिक निकट आ गई है। व्याकरण की दृष्टि से सर्वनामों में- मैं, तू, हम, तुम, ऊ, ऊँ, (वह, वे) का प्रयोग चलता है। संबंध कारक बहुवचन का रूप 'उनको' न होकर 'उनर' होता है। हिन्दी की भाँति कुमाउँनी में दो ही लिंग प्रयुक्त होते हैं और यह लिंगत्व केवल पुरुषत्व, स्त्रीत्व के भेद पर आधारित नहीं प्रत्युत वस्तु के आकार तथा स्वभाव पर भी निर्भर है। वचन दो हैं, तथा हिन्दी की प्राय: सभी धातुएँ मिलती हैं। पदक्रम, एवं वाक्यविन्यास भी मिलता जुलता है। आरंभ में कर्ता अंत में क्रियापद रहता है। क्रियाविशेषण भी हिन्दी की भाँति क्रिया के पूर्व आता है।

फिर भी कुमाउँनी में कुछ ध्वनियाँ खड़ी बोली हिन्दी की अपेक्षा विशिष्ट हैं। स्वरों की दृष्टि से ह्रस्व 'आ', ह्रस्व 'ए', ह्रस्व 'ऐ', ह्रस्व 'ओ' तथा ह्वस्व 'औ' ध्वनियाँ देखी जा सकती हैं। इस भेद से शब्दार्थों का अंतर हो गया है। जैसे, 'काँव' (ह्रस्व आ) शब्द का कुमाउँनी में अर्थ हैं- 'काला' और 'काव' (दीर्घ आ) शब्द का अर्थ होता है 'काल'- अर्थात् मृत्यु। व्यंजनों में विशेष 'न' तथा विशेष 'ल' की उपलब्धि होती है। 'कांन' (काँटा), 'भांन' (बर्तन) जैसे शब्दों में विशिष्ट 'न' ध्वनि है जिसका उच्चारण कुछ तालव्य की ओर झुका हुआ है। विशेष 'ल' वर्ण गंगोली तथा काली कुमाऊँ की बोलियों में प्राप्त होती है। कुमाउँनी की आठ बोलियाँ हैं - (1) खसरजिया, (2) कुमय्याँ, (3) पछाई, (4) दनपुरिया, (5) सोरमाली, (6) शीराली, (7) गंगोला, (8) भोटिया। कुमाउँनी भाषा की लिपि देवनागरी है। इसका मौखिक साहित्य बड़ा समृद्ध है, यद्यपि लिखित साहित्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

गढ़वाली भाषा में अभी प्राचीन तत्व कुमाउँनी की अपेक्षा सुरक्षित हैं। इसका व्यवहार जिला गढ़वाल, टेहरी, चमोली, तथा उत्तर काशी में होता है। यह क्षेत्र लगभग 10,000 वर्गमील है तथा गढ़वाली भाषा भाषियों की संख्या लगभग 10 लाख। यहाँ भौगोलिक कारणों से आवागमन की कठिनाइयाँ हैं। इसलिए पहाड़ियों के दोनों ओर रहने वालों अथवा एक ही नदी के आर-पार रहने वालों के भाषागत प्रयोगों में विशेषताएँ उभर आई हैं। उत्तर की बोलियों में तिब्बती तथा पूर्व की ओर कुमाउँनी प्रभाव स्पष्ट होता गया है क्योंकि इन क्षेत्रों की सीमाएँ

मिली हुई हैं। राजपूत जातियों का निवास होने के कारण गढ़वाली पर राजस्थानी प्रभाव तो है ही, इसके दक्षिण-पश्चिम की ओर खड़ी बोली भी अपना प्रभाव डालती जा रही है।

गढ़वाली भाषा की कुछ विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। इसका झुकाव दीर्घत्व की ओर है अत: स्वरों में ए, ऐ, ओ, औ, की ध्वनियाँ, जिनका दीर्घ रूप प्रधान है, अधिक प्रयुक्त होती हैं। अनुनासिकता की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत कम हैं। कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जो प्राचीन भाषाओं से चले आए हैं जैसे ष्मुखष के अर्थ में 'गिच्चो' शब्द। संभव है इनमें अनेक प्राप्त शब्द प्राचीनतम जातियों के अवशेष हों। व्याकरण की दृष्टि से गढ़वाली में एक दंताग्र 'ल' ध्वनि पाई जाती है जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। क्रिया रूपों में धातु के अंतिम 'अ' का लोप करके 'ओ' या 'अवा' जोड़ा जाता है, जैसे दौड़ना। लिंगभेद भी प्राय: नियमित नहीं। वस्तुओं की लघुता, गुरुता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। अनेक शब्दों के एकवचन, बहुवचन रूप समान चलते हैं। उच्चारण में मूर्धन्य 'ल' और 'ण' की विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। स्थानभेद से गढ़वाली की नौ प्रमुख बोलियाँ हैं- (1) श्रीनगरिय, (2) सलाणी, (3) मंझकुमइयाँ, (4) गंगवारिय, (5) बधाणी, (6) राठी, (7) दसौलिया, (8) लोभिया और (9) रर्वाल्टी। इनमें उच्चारण का ही मुख्य अंतर प्रतीत होता है। गढ़वाली भाषा का भी मौखिक साहित्य महत्त्व रखता है।

पश्चिमी पहाड़ी : यह पहाड़ी भाषाओं का तीसरा भेद है। वस्तुत: यह अनेक बोलियों का सामूहिक नाम है। ये बोलियाँ जोनसार बावर, शिमला, उत्तर-पूर्वी-सीमांत पंजाब, कुल्लू घाटी, चंबा आदि स्थानों में बोली जाती हैं। इन सभी बोलियों का साहित्य लिखित रूप में प्राप्त नहीं, इस कारण भाषा वैज्ञानिक खोज बहुत कम हो पाई है। अभी तक जो बोलियाँ इसके अंतर्गत निश्चित की जा सकी हैं, उनका क्षेत्रविस्तार लगभग 14 हजार वर्गमील का है तथा बोलनेवाले प्राय: 16 लाख हैं। इनमें मुख्य हैं - (1) सिरमौरी, (2) जौनसारी, (3) कुलुई, (4) चम्ब्याली (5) मण्डियाली और (6) भद्रवाही, आदि। इन बोलियों में अधिकांश लोकगीत और कथाएँ विशेष प्रचलित हैं। कुलुई तथा चंबाली पर इधर कुछ कार्य हुआ है।

कुलुई का क्षेत्र, बहुत संभव है, प्राचीन कुणिंद जल का क्षेत्र रहा हो जिसने यहाँ राज्य किया था। इस समय यह बोली कुल्लू घाटी से लेकर हिमाचल प्रदेश के महासू जिले तक बोली जाती है। चम्ब्याली अपने स्वरमाधुर्य के लिए उल्लेखनीय है तथा स्थानभेद से इसके भी 'भट्याली', 'चुराही', आदि रूपांतर मिलते हैं। मांडियाली सुकेत में बोली जाती है जबकि बधाटी सोलन की ओर। शिमला के चतुर्दिक् क्यूथली का व्यवहार होता है। पहले पश्चिमी पहाड़ी की ये सभी बोलियाँ टक्करी लिपि में लिखी जाती थीं किन्तु अब देवनागरी का प्रयोग होता है।

-शैलेन्द्र चौहान

34/242, सेक्टतर-3, प्रताप नगर, जयपुर-302033

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी की नि: शुल्क सभाकक्ष योजना

साहित्यिक कार्यक्रमों के आयोजन हेतु नि:शुल्क 'सभाकक्ष' उपलब्धता संबंधी महत्त्वपूर्ण सूचना :-

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी द्वारा लेखकों, साहित्यकारों, शिक्षाविदों, साहित्यिक/सांस्कृतिक संस्थाओं के लिए साहित्यिक कार्यक्रमों जैसे पुस्तक लोकार्पण, पुस्तक परिचर्चा, काव्य गोष्ठी, विमर्श, संगोष्ठी, सम्मान समारोह आदि के लिए अकादमी का 'सभाकक्ष' नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा।

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी एक स्व-वित्तपोषित संस्था है जो अपने सीमित संसाधनों से विभिन्न योजनाओं का कार्यान्वयन करती है। अपने कार्यों को विस्तार देते हुए अकादमी ने रोहिणी, दिल्ली में एक कार्यालय बनाया है, जिसमें अन्य सुविधाओं के साथ ही 65-70 व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था वाला सुसज्जित वातानुकूलित सभाकक्ष भी बनाया गया है। इस हॉल में मंच, पोडियम, माइक आदि की व्यवस्था है। अकादमी की केंद्रीय समिति ने निर्णय लिया है कि अकादमी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति संवर्धन के प्रति अपनी प्रतिबद्धता एवं नैतिक जिम्मेदारी का निर्वहन करते हुए कार्यालय स्थित सभागार को साहित्यिक आयोजनों हेतु नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा।

सभाकक्ष में कार्यक्रम आयोजन हेतु सामान्य नियमावली-

1. सभाकक्ष सीमित समयावधि के लिए पूर्णतया नि:शुल्क उपलब्ध कराया जाएगा ।

2. सभाकक्ष की नि:शुल्क बुकिंग 'पहले आओ-पहले पाओ' और उपलब्धता के आधार पर की जाएगी।

3. आयोजन के लिए लिखित रूप/ईमेल द्वारा, कार्यक्रम के विवरण सहित आवेदन करना होगा तथा आयोजन अवधि में पूर्ण अनुशासन बनाये रखने की सहमति देनी होगी।

4. सभाकक्ष में केवल साहित्यिक आयोजनों की ही अनुमति होगी और अकादमी की केंद्रीय समिति का निर्णय ही अंतिम माना जाएगा।

नोट : नि:शुल्क सभाकक्ष की बुकिंग के लिए संपर्क करें :-

सुधाकर पाठक

अध्यक्ष, हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी
प्लॉट 19-20, पॉकेट बी-5, सेक्टर 7, रोहिणी,
(निकट रोहिणी पूर्व मेट्रो स्टेशन), दिल्ली-110085

ईमेल: hindustanibhashabharati@gmail.com
Info@hindustanibhadhaakadami.com
मोबाइल- 9873556781 / 9968097816

वेबसाइट : www.hindustanibhashaakadami.com

दशैं

अनेक जाति-जनजातियों की,धर्म-संस्कृति और परंपराओं की संगम स्थल है हमारा देश। इसीलिए यहाँ बारह महीने त्योहार मनाए जाते हैं। त्योहारों में से राष्ट्रीय त्योहार जिसे जाति धर्म निर्विशेष सभी देशवासी स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस, गाँधी जयंती आदि उत्साह और उल्लास के साथ मनाते हैं। धर्मीय त्योहार धर्म-विशेष के लोग मनाते हैं। सिख, ईसाई, इस्लाम, बौद्ध आदि धर्मों में से ज्यादा हिन्दू धर्म में त्योहार ज्यादा मनाए जाते हैं। इनमें प्रमुख है नवरात्र,राम नवमी, दशहरा, दुर्गा पूजा, गुड़ी पड़वा, दिवाली, गणेश चतुर्थी, छठ पूजा आदि। मकर संक्रांति लोहोरी, पोंगल, बिहू आदि ऋतु कालीन उत्सवों को भी धर्म से अलग किया नहीं जा सकता।

प्रमुख त्योहार नवरात्रि, दुर्गा पूजा, दशहरा, और दशै आश्विन-कार्तिक महीने में पड़ते हैं। प्रकृत में यह एक ही त्योहार है, अंचल विशेष के लोग अलग-अलग नाम से जानते हैं।

सनातन धर्म को अनुसरण करनेवाले नेपाली लोग नवरात्रि को दशैं कहते हैं। वर्ष भर में चार बार आनेवाले त्योहार नवरात्रि की चैत्र नवरात्रि और आश्विन नवरात्रि को महत्त्व दिया जाता है।

चैत्र नवरात्रि को 'चैते दशैं' और आश्विन नवरात्रि को 'बड़ा दशैं' कहते हैं। 'चैते दशैं' और 'बड़ा दशैं' का पूजा विधान एक ही है। 'चैते दशैं' में कुछ लोग नवरात्रि की पूजा विधि विधान पूर्वक करते हैं तो कुछ लोग दशमी के दिन को ही महत्त्व देते हैं और इस दिन में बड़े-छोटों को दही अक्षत-चावल का टीका लगा कर आशीर्वाद देते हैं । विवाहिता बहन-बेटियों को मायके में बुलाया जाता है, टीका लगाकर दक्षिणा या उपहार के रूप में पैसे, कपड़े दिए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन के साथ भोजन परोसे जाते हैं। कुछ लोग अष्टमी के दिन को महत्त्व देते हैं। इस दिन देवी माँ के कालरात्रि रूप की पूजा होती है। मांसाहारी बकरी, हाँस, कबूतर का बलि चढ़ाते हैं। शाकाहारी कूमड़ा (पेठा, कूष्माण्डा), तोरई, ककड़ी का बलि चढ़ाते हैं। इस दिन में भी बहन, बेटियों को खिलाया-पिलाया जाता है। परन्तु आश्विन नवरात्रि अथवा 'बड़ा दशैं' को लोग जितना उत्साह और हर्षोल्लास के साथ मनाते हैं

उसकी तुलना में 'चैते दशैं' का रंग फीका लगता है। देखा जाय तो चौते दशैं को परंपरा के नाम मात्र में ही निभाया जाता है । कहते हैं 'चैते दशैं' भी पहले धूम-धाम के साथ मनाते थे, परन्तु बाद में लोगों को इस पर्व को वसंत ऋतु में धूमधाम मनाने से अधिक शरद ऋतु में मनाना अधिक सुविधाजनक लगा। क्योंकि वसंत ऋतु से पहले शिशिर ऋतु आती है जिस समय धरती का पानी सूख जाता है जिसके कारण वसंत में भी पानी का अभाव होता है। बहुत पहले आजकल की तरह गाड़ी-मोटर की सहुलियत नहीं थी और आवादी भी घनी नहीं होती थी जिसके कारण पैदल चलते-चलते प्यास लगने पर रास्ते में कहीं पानी मिलने की सम्भावना कम ही होती थी। रास्ते में अगर कहीं कुआँ दीख जाता तो भी सूखा होता। इतना कष्ट उठाकर आने-जाने के कारण लोग बीमार पड़ते थे। शरद ऋतु से पहले वर्षा ऋतु आती है, धर्ती में पर्याप्त पानी होता है। इसी कारण इतना कष्ट उठाना नहीं पड़ता था। इसी कारण आश्विन में लोग 'बड़ा दशैं' मनाने लगे।

आश्विन शुक्ल पक्ष के प्रतिपदा के दिन शुभ मूहूर्त देखकर पूजा का घट स्थापन करते हैं। शुद्ध स्थान से मिट्टी लाकर तामें के वर्तन या केले के पत्ते में डाल कर उस मिट्टी पर पहले से ही भीगोकर रखें गेंहू, जौं, मक्की उगाने के लिए बो देते हैं। दो तीन दिनों में ये अंकुरित हो जाते हैं और इन ज्वारे को नेपाली भाषा में श्जमराश कहते हैं । प्रतिपदा के दिन से घट कलश के साथ इनकी भी नौ दिनों तक पूजा की जाती है अर्थात नौ दिनों तक देवी के अलग अलग नौ रूप की पूजा होती है और ये पूजा स्थल पर रहते हैं। दशमी के दिन बड़े-छोटों को दही और रोली या अबीर सने अक्षत चावल (कोई कोई रोली डालते नहीं, विधवाओं को सफेद अक्षता का टीका) से टीका लगा कर आशीर्वाद देते हैं और पूजे गए जमरे से एक दो अंकुर निकालकर सिर पर रखते हैं या कान पर अटका देते हैं। छोटे आशीर्वाद लेकर बड़ों को ढोंग (प्रणाम) करते हैं और बड़ों के दिए दक्षिणा, उपहार ग्रहण करते हैं। फिर सहुलियत के अनुसार खिलाना-पिलाना,खाना- पीना होता है।

दोनों दशैं के खाने में दही, चिउड़ा (पोहा), केले का जुगाड अवश्य होना ही है। दही, चिउड़ा, केले किसी भी मांगलिक कार्य की अनिवार्य सामग्री हैं। साथ में परोसे जाते हैं नेपाली पारंपरिक मिठाई चावल के आटे से बनी चुड़ी के आकार की 'सेल रोटी' जिसे बनाने के लिए चावल के आटे के साथ चीनी या गुड़ डालकर दूध या पानी मिलाकर बैटर बनाया जाता है फिर गर्म तेल में आकार देकर तली जाती है। त्योहार की थाली में थाली में 'तिलको अचार' न हो तो थाली अपूर्ण लगती है। यह व्यंजन एक विशेष प्रकार का चाट है। उबले केले के फूल, आलू, मटर और भूनकर पीसे हुए तिल का सना हुआ व्यंजन है जिसमें स्वादानुसार नमक पड़ता है और मिर्च, खटाई भी डाली जाती है। प्याज का छोंका इसका स्वाद बढ़ाता है।

दोनों दशैं में फर्क इतना है कि 'चैते दशैं' में निमंत्रण किया जाता है और 'बड़ा दशैं' में छोटे बिना निमंत्रण के बड़ों से आशीर्वाद लेने आते हैं।

-गीता लिम्बू, शिलांग-6

पद्मश्री प्रतिमा बरुआ पांडे

भारतवर्ष का असम राज्य के अन्तर्गत एक पुराना जिला है– गोवालपाड़ा। अब यह गोवालपाड़ा जिला दो भागों में विभक्त होकर एक गोवालपाड़ा और दूसरा धुबरी के नाम से जाना जाता है। पुराने अविभक्त गोवालपाड़ा जिले के गौरीपुर नामक स्थान में प्रतिमा बरुआ पांडे का पैतृक घर था। प्रतिमा के वंशज एक समय के राजपरिवार थे। शाही परिवार की राजकन्या होकर भी प्रतिमा की भावनाओं मे तनिक भी अभिजात्य का अहंकार नहीं था। सभी प्रकार के लोगों से मिलजुलकर रहना उन्हें पसंद था। प्रतिमा बरुआ को साहसी नारी के रूप में जाना जाता है, साहसी होने के कारण लोग उनकी प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने अपने जिले के अछूत लोगों से मिलकर और उनकी भाषाएँ एवं गीत सीखकर उन्हें गाया और उन लोकगीतों को समाज में प्रतिष्ठा दिलाई। गोवालपरिया लोकगीत अर्थात् गोवालपाड़ा के लोकगीत जिन्हें देशी गीत भी कहा जाता है, उन्हें गाकर प्रतिमा को विमल आनन्द का अनुभव होता था। बाद में गोवालपरिया गीतों में प्रतिमा बरुआ की अद्वितीय प्रतिभा को लोगों ने सराहा। प्रतिमा ने गोवालपाड़ा के लोक संगीत को पुनर्जीवित कर भारतवर्ष में गायन क्षेत्र को अत्यन्त मजबूत करते हुए अपना वर्चस्व भी कायम किया। इसके लिए उन्हें राष्ट्रीय तथा राज्यिक अनेक पुरस्कारों से भी नवाजा गया और भारत सरकार की ओर से उन्हें पद्मश्री सम्मान भी प्रदान किया गया।

प्रतिमा बरुआ का जन्म 3 अक्टूबर, 1934 ई. को महालया (नवरात्र के पहले दिन) के दिन कोलकाता बालिगंज में हुआ। उनके पिता हस्ती विशारद, अर्थात् हाथी पकड़ने की कला में निपुण थे। नाम था प्रकृतिश चन्द्र बरुआ और माँ का नाम मालतीलता बरुआ था। प्रतिमा के पिता जी को लोग लालजी के नाम से पुकारते थे। महालया के पवित्र दिन अर्थात् नवरात्र के प्रारम्भ के दिन में जन्म होने के कारण उनके दादाजी ने पोती का नाम ‘प्रतिमा’ रखा। क्योंकि शैशव काल में प्रतिमा का मुखाकृति भी दुर्गा की प्रतिमा की तरह ही दिखता था। प्रतिमा क्रमशः हँसते–खेलते बढ़ी होने लगी।

प्रतिमा ने प्राथमिक शिक्षा गौरीपुर की पाठशाला में और कुछ साल कोलकाता के गोखले मेमोरियल हाइस्कुल में प्राप्त किया। कोलकाता से लौटकर बाद में जन्मभूमि असम के गौरीपुर में गर्ल्स हाई स्कूल से 1943 में 18 साल की आयु में प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण की।

उन्होंने अपने शैशव के प्रारंभिक काल कोलकाता के दीन और गौरीपुर में सुखमय वातावरण में बिताया। प्रतिमा ने स्कूल की शिक्षा और संगीत की साधना को एक साथ आगे बढ़ाया। उन्होंने अध्ययन काल में ही रवींद्र संगीत सीख लिया था। लेकिन उन्होंने कभी भी संगीत की औपचारिक प्रशिक्षण नहीं ली। बिना औपचारिक संगीत प्रशिक्षण के ही प्रतिमा गोवालपरिया लोकसंगीत की साम्राज्ञी बनी।

प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद प्रतिमा फिर से दक्षिण कोलकाता गर्ल्स कॉलेज में पढ़ने के लिए दाखिला हुईं, मगर कुछ समस्याओं के चलते अध्ययन को आगे न बढ़ा सकीं। आधी–अधूरी पढ़ाई के बाद पांडे ने संगीत साधना में ही खुद को जी–जान से लगा दिया। घर के दादा राजाबाहादुर और बुआ नीहारबाला बरुआ संगीत के अनुरागी तो थे ही इन दोनों के कारण घर में संगीत का माहौल बना रहता था। अतः पांडे की संगीत की प्राथमिक शिक्षा पथप्रदर्शक उनके दादा और बुआ थे। प्रतिमा की पढ़ाई जब बीच में ही समाप्त हुई तब वे संगीत की साधना में अधिक दत्तचित्त से लग गईं।

जैसा कि पहले ही कहा गया है कि प्रतिमा ने संगीत की आनुष्ठानिक शिक्षा नहीं ली थी। लेकिन गोवालपरिया लोकगीतों ने उन्हें मोह लिया था। इसलिए प्रतिमा ने हाथियों का शिकार करने वाले गोवालपाड़ा जिले के जंगलों में रहने वाले महावतों से गाना सीखा था। हाथियों को पकड़ने में माहिर पिता लालजी अपनी दोनों बेटियां प्रतिमा और पार्वती को साथ लेकर कुछ महावतों के साथ जंगल में बने शिविर में रहते थें। शिविर में छोटी बेटी पार्वती हाथी पकड़ने का कौशल सीखती थी और बड़ी बेटी प्रतिमा साँझ के वक्त जब महावत शिविर में लौट आते और स्वर, ताल, लययुक्त लोकगीत गाया करते थे, तब प्रतिमा उन्हें ध्यानपूर्वक सुनती, सीखने की कोशिश करतीं। शुरु–शुरु में प्रतिमा भी जंगलों में जाकर शिकार किया करती थीं। उन्होंने शिकार के दौरान 6 बाघों का शिकार भी किया था। मगर बाद में उन्होंने जानवरों का शिकार करना छोड़ दिया। पिता के साथ शिविर में रहकर वे महावतों के द्वारा गाए गए गीतों मे हाथों से ताल देते हुए गाने का अभ्यास करती थीं। जंगल में बने उन शिविरों में राजकुमारी के अभिन्न

मित्र अशिक्षित व निरक्षरी महावत ही थें। शाम के वक्त खाना खाने से पहले अपने से अलग हुए पत्नी, पुत्र तथा स्व परिजनों को स्मरण करते हुए महावत मुक्त कंठ से गाना गाया करते थे। प्रतिमा भी उन्हें मन लगाकर सुनती और गाती। महावत गाया करते थे– 'मा को छोड़ आए घर में, दीदी को छोड़ आए, सोने का नगर छोड आए, विवाह करके भी छोड़ आए, कम उम्र की नारी, सखी हे, मेरी हाय हस्ती कन्या रे। थोड़ी सी दया करो महावत के लिए भी।'

ई. 1955, प्रतिमा बरुआ का भाग्योदय वर्ष कहा जाए तो भी आश्चर्य की बात नहीं है। इसी साल सुधाकंठ डॉ. भूपेन हजारिका को गौरीपुर के राजभवन में अतिथि के रूप में आमन्त्रित किया गया था। आमन्त्रण के अनुसार हजारिका साहब गौरीपुर के राजभवन में अतिथि होकर पहुँचे। साँझ का वक्त था। गीतों का सिलसिला चला। सुधाकण्ठ हजारिका ने बंगला, असमिया, हिन्दी आदि गाने गाकर श्रोताओं को मुग्ध किया। स्थानीय युवकों द्वारा रवींद्र संगीत के गाने के बाद प्रतिमा बरुआ की बारी आई। प्रतिमा पांडे असमंजस में पड़ी, असमिया गाने गाऊँ, बंगला गाने गाऊँ या देशी लोकगीत ही गाऊँ। बेटी की ऐसी दुविधा की हालत देखकर पिता लालजी ने कहा– 'बुसु! (घर में प्रतिमा को इसी नाम से बुलाते थे) बंगला, असमिया गानतो हुया गेइल, एइबार तुइ आमार गिलाइ धरेक (अर्थात् असमिया और बंगला गाने तो हो चुके, तुम अपनी देशी गीत गाओ)।'' पिता की आज्ञा पाकर पांडे गोवालपाड़ा के लोकगीत गाने लगीं। नये मिठासयुक्त लोकगीत सुनकर सुधाकण्ठ डॉ. भूपेन हजारिका आश्चर्यचकित हुए और अभिभूत भी हुए। उन्होंने पूछा, ''ये कौन से गीत हैं?'' प्रतिमा ने उत्तर दिया– ''ये देशी गीत हैं।'' जिस तरह जौहरी जौहर को पहचान लेता है उसी तरह हजारिकाजी ने भी इन लोकगीतों का महत्त्व समझ लिया। प्रतिमा के कण्ठ से प्रतिध्वनित हुए इन गीतों में स्वदेश की मिट्टी की खुशबू थी। अतीत के गर्त में डुबी संस्कृति थी। स्वर, शैली और गीत के बोल को सुनकर हजारिका अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने अपनी निर्माणाधीन चलचित्र 'एराबाटर सुर' में प्रतिमा बरुआ को गवाकर दो गीतों को सामेल करने का फैसला लिया। इस तरह डॉ. हजारिका का चलचित्र 'एराबाटर सुर' से गोवालपरिया लोकगीत गायन की यात्रा सुरु करने वाली प्रतिमा बरुआ ने एक समय में संगीत की दुनिया और संगीतप्रेमियों का मनमोह लिया और लोकगीत गायन में एक मिसाल बनकर सामने आई।

'एराबाटर सुर' चलचित्र में गाने के बाद कुछ साल बाद अर्थात् 1957 ई. में 'माहुत बन्धु रे' नामक चलचित्र में सुधाकंठ डॉ. भूपेन हजारिका के साथ प्रतिमा बरुआ ने गीत गाए, उन गीतों ने ही उनको लोकप्रियता की चोटी पर पहुँचा दिया। साथ ही असम में गोवालपरिया गीतों का महत्त्व और आदर भी प्रतिष्ठित हुआ। प्रतिमा बरुआ ने ही गोवालपरिया लोकगीत में प्राण भरे और इन देशी तथा स्थानीय लोकगीतों को संसार भर में आदर मिला। इससे पहले ई 1949 में कोलकाता के न्यु एम्पेयार थिएटर में इन देशी गीतों को गाकर प्रतिमा बरुआ ने श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध किया था। उस वक्त हिन्दी की प्रख्यात गायिका गीता दत्त से भी उनका परिचय हुआ था।

प्रतिमा बरुआ पांडे अब परित्यक्त, अवहेलित, अनादृत, भुले–बिसरे गोवालपरिया लोकगीतों के संग्रह में जुट गईं। जनजातीय भाषा, जनजातीय लोकगीत, गीतों की ध्वनि, शैली आदि के बारे में जानकारियां बटोरने लगीं और उन्हें सामाजिक कार्यक्रमों के माध्यम से इन गीतों के प्रचार–प्रसार के कार्य में जुट गईं। इस तरह कुछ समय बाद प्रतिमा बरुवा लोकगीतों के गायन जगत में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गईं। साथ ही गोवालपरिया लोकगीतों को भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित भी किया। 1962 ई. में गुवाहाटी आकाशवाणी केन्द्र के संचालक पुरुषोत्तम दास के प्रयास में प्रतिमा ने 'एक बार हरि बोलो, मन रसना, मानव देहेर गौरव करो ना' विख्यात आध्यात्मिक गीत स्वरबद्ध किया, जो नई दिल्ली में गणतन्त्र दिवस (1966) के दिन एक विशेष कार्यक्रम में गाया गया और इस गीत के कारण वे लोगों से प्रशंसित भी हुईं।

गोवालपरिया लोकगीतों के कारण संगीत जगत में अपना एक अलग स्थान बनाने में सक्षम प्रतिमा बरुआ का विवाह गौरीपुर के प्रमथेश बरुवा कॉलेज के अंग्रेजी विषय के प्रवक्ता गंगा शंकर पाण्डे के साथ 13 सेप्तेम्बर, 1969 के दिन हुआ। विवाह के वक्त उनकी उम्र 35 साल थी। अब प्रतिमा बरुवा, प्रतिमा बरुवा से प्रतिमा बरुवा पांडे हुई। कारण, विवाह के पश्चात् प्रतिमा ने अपने नाम के पीछे पांडे उपाधि लिखना आरंभ किया। इस तरह उनका पूर्ण नाम हुआ प्रतिमा बरुआ पांडे।

गोवालपरिया संगीत को ऊँचाइ पर ले जाने के कारण उन्हें अनेक संस्था व सरकार से सम्मान भी मिला। उन्होंने अपने जीवन में कई महत्त्वपूर्ण पुरस्कार भी प्राप्त किये। इनमें से कुछ उल्लेख योग्य पुरस्कार इस प्रकार हैं- पहला, पुरस्कार उन्हें 1988 में भारतीय संगीत एकेडमी से प्राप्त हुआ, दूसरा पुरस्कार ई. 1991 में भारत सरकार द्वारा पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया, तीसरा ई. 1993 में अब्बास उद्दीन स्मरण समिति द्वारा विशेष सम्मान

प्राप्त हुआ और चौथा, 2001 में उत्तरबंग विश्वविद्यालय द्वारा डि. लिट. की उपाधि भी मिली।

वास्तव में प्रतिमा बरुआ पांडे का जीवन वृत्तांत बारीकी से देखा जाए, तो उन्हें हम गणशिल्पी के रूप में मान सकते हैं। क्योंकि बरुआ पांडे ने लोकसंगीत को साधारण लोगों के मुँह से निकाल कर एक आकाश दिया है, जहाँ इन लोकगीतों ने विचरण करते हुए विशालता प्राप्त की और कस्बे से निकल कर विशाल जगत में अपना आधिपत्य विस्तार किया और प्रतिमा बरुआ पांडे के कारण ही गोवालपरिया लोकगीतों का समाज में आदर बढ़ा और लोगों से समादृत हुई। प्रतिमा बरुआ ने खोई हुई संस्कृति को जगाकर उसमें प्राण संचार किया। यह प्राण संचार का कार्य कोई सरल कार्य नहीं था। फिर भी प्रतिमा बरुआ पांडे ने सुधाकंठ डॉ. भूपेन हजारिका के संस्पर्श में आकर जो कर दिखाया वह कोई साधारण कार्य नहीं था। एकाग्रता और दत्तचित्त से निरन्तर कार्यशील होकर समाज के गर्भ में अदृश्य से हो चुके लोकगीतों को पुनर्जीवित कर समाज में जो प्रतिष्ठा दिलाई इसके कारण प्रतिमाजी अमर हस्ती बनकर असम के खेत-खलिहानों से लेकर शहर-नगरों तक प्रिय और अमर गायिका बनीं। आज मृत्यु के पश्चात् भी जीवित हैं। उन्होंने अपने जीवन में अनेक लोकगीत गाए हैँ, जिनका हिसाब कर पाना असम्भव भी है।फिर भी उनके गाए हुए कुछ प्रमुख तथा लोकप्रिय लोकगीतों के नाम यहाँ लिख रही हूँ- 1. आजी दानराव काला, 2. अफनाला कदामेर टेल, 3. काषते कलसि लै, 4. बैल माछे खेल करे, 5. धिक धिक, 6. दुइ दिनेर भलोबाशा, 7. गोबर नोरी गोबर, 8. एक बर होरी बोलो रसोना, 9. हस्तिर कन्या, 10. कोमोला सुंदोरी नाचे, 11. माटीर मानुष. 12. माटीर पिंजिरा, 13. हे बिरिखा, 14. ओ पारे कामरानगर गाछ, 15. ओह मोर महुत बंधुरे, 17. सोनार चंद चंद्रे, 18. हे श्याम कालिया रे, इत्यादि।

लोकगीत गाने के साथ-साथ जीवन के अंतिम पड़ाव पर प्रतिमा बरुआ पांडे ने आत्मजीवनी लिखना भी प्रारंभ किया था। मगर दुर्भाग्य यह है कि उनकी आत्मजीवनी लेखन समाप्त न हो पाई। फिर भी उन्होंने इस आत्मजीवनी में लिखा है- ''मैं देश-काल, जात-पात को नहीं मानती। मैं बंगाली, मैं बिहारी, मैं बोड़ो, मैं राभा, मैं हिन्दू, मैं मुसलमान, मैं नहीं जानती और नहीं मानती। हम भारत के वासी भारतीय हैं और हम सब एक ही माँ के सन्तान हैं।'' प्रतिमा के ऐसे विचार और भावनाएँ विश्वविख्यात गणशिल्पी पोलरबसन के विचारों से मिलते थे। रबसन का लोकप्रिय गीत भी इस तरह का था- We are on the same boat brother (हम सब एक ही नाव के यात्री हैं।)''

ऐसी महिमामंडित प्रतिमा बरुवा पांडे का देहांत सन् 2005 के 27 दिसम्बर के दिन गुवाहाटी के GNRC अस्पताल में हुआ। प्रवीण हजारिका ने उनके जीवनी पर आधारित एक डॉकुमेन्ट्री (जीवनी फिल्म- Biographical Film) 'हस्तीर कन्या' नाम से निर्माण किया, जिसको श्रेष्ठ जीवनीमूलक फिल्म होने का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त है। ऐसी गौरवशाली प्रतिमा बरुआ पांडे असम भूमि की गौरव तथा सम्मान हैं। उनको हम तहे दिल से स्मरण व सम्मान करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :

1. साहित्य, संस्कृति एवम् धर्मका आराधिका केही मातृहरू-लेखक-तारापति उपाध्याय ।

2. गोवालपरीया लोकगीत- लेखक-द्विजेन नाथ ।

-कल्पना देवी आत्रेय
कलियाबर, अस

विशेष सूचना

'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' त्रैमासिक पत्रिका के आगामी अंक हेतु लेख आमंत्रित हैं ।

'हिन्दुस्तानी भाषा भारती' पत्रिका के आगामी अंक हेतु हिन्दी भाषा से सम्बंधित विविध विषयों पर लेख/आलेख, निबंध एवं शोध सामग्री भेजें। पत्रिका के स्थायी स्तम्भ 'साक्षात्कार' में वरिष्ठ साहित्यकारों, पत्रकारों, भाषाविदों, शिक्षाविदों, सरकारी कार्यालयों के उच्चाधिकारियों, प्रशासनिक सेवा अधिकारियों, विभिन्न देशों के राजनयिकों आदि के भाषा पर केंद्रित साक्षात्कारों को सम्मिलित किया जाता है । इसी तरह 'लोक भाषाओं का चमत्कार' स्तम्भ में किसी एक भारतीय भाषा/उपभाषा एवं बोलियों पर केंद्रित लेखों को सम्मिलित किया जाता है जिसे विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया जाता है । अब तक बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, कुमाऊंनी, भोजपुरी, पंजाबी, अवधि, नेपाली, मैथिली, डोगरी, संस्कृत, संथाली, तमिल, कश्मीरी, मालवी, बघेली, हरियाणवी, बंगाली, कोंकड़ी, पवारी, गुजराती, तेलुगु, उड़िया एवं पूर्वोत्तर भारत के भाषाओं के विशेषांक प्रकाशित हो चुके हैं । 'युवा मत' स्तम्भ में देश के विभिन्न महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययनरत शोधार्थियों एवं युवा लेखकों के भाषा पर केंद्रित शोधपरक लेखों को सम्मिलित किया जाता है । पत्रिका के 'हिन्दी दिवस विशेषांक' हेतु हिन्दी भाषा पर केन्द्रित लेख/निबंध आमंत्रित हैं।

1. 'समाचार पत्रों एवं संचार माध्यमों में हिन्दी की स्थिति
2. हिन्दी की राष्ट्रीय स्वीकार्यता: समस्या एवं संभावनाएँ
3. संयुक्त राष्ट्र महासभा तक हिन्दी का विकासक्रम
4. साहित्य और सिनेमा से इतर भी हो हिन्दी का उत्थान
5. शिक्षा और शोध के रूप में हिन्दी की दशा और दिशा आदि से सम्बंधित सारगर्भित लेख नीचे दिए गए ई-मेल पर भेजें।

E-mail : hindustanibhashabharati@gmail.com

मूल खासी (जनजातीय) संस्कृति में नैतिक मूल्य

डॉ. अनीता पंडा

मूल खासी समुदाय सदैव ही अपनी लोक-संस्कृति, परम्परा और मान्यताओं के साथ-साथ आदर्शों के साथ फलता-फूलता रहा है । इसका उद्देश्य एक स्वस्थ्य, सहज, सफल जीवन जीना है । इसके लिए बच्चों में आरम्भ से ही नैतिक मूल्यों का संस्कार देना इसका प्रमाण है । सफल जीवन एवं आदर्श नागरिक के लिए ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की नहीं अपितु ईमानदारी तथा सच्चाई से बुजुर्गों या पूर्वजों द्वारा दी गई सीखों या नियमों का पालन करना आवश्यक है । यह जीवन का सही दिशा निर्धारित करता है और उसे आसान बनता है । अत: खासी पूर्वजों तथा वयोवृद्धों ने जीवन के हर क्षेत्र में क्या करना चाहिए? क्या नहीं ? इससे सम्बंधित शिक्षा या सीखें दी हैं, जिसका पालन आज तक खासी समुदाय के लोग कर रहे हैं । इन नियमों को फव्वारों अर्थात पदों के रूप में लिखा गया है । "का जिन्सनेंग त्यम्में" (Ka Jingsneng Tymmen) अर्थात बुजुर्गों का पहला प्रकाशन सन 1897 में "राधोन सिंग बेरी खर्वान्लांग" द्वारा खासी में हुआ, जो की मौखिक परम्परा में था। उसके बाद इसका अनुवाद अंग्रेजी में (The Teaching Of Elder) "बिजोया सावियन" ने किया और हिन्दी में लेखिका द्वारा किया गया ।

इन फव्वारे या पदों को बच्चे गाकर सीखते हैं । बड़ी ही सरल भाषा में लिखे गए ये फव्वारे मूल खासी आचार संहिता है, जिसमें ऊँचे नैतिक मूल्य हैं । ये नैतिक मूल्य न केवल भावी पीढ़ी का मार्गदर्शन करती है अपितु उनका जीवन सहज, सुखद एवं सफल बनती है ।

आज सर्वत्र हिंसा और घृणा तथा आत्मप्रशंसा का वातावरण है । स्वयं को श्रेष्ठ साबित करने के लिए अक्सर दूसरों का अपमान करना एवं नीचा दिखाना जैसे आम बात हो गई है, ऐसे में निम्न फव्वारे में एक दूसरे का सम्मान करने, आदर के सतह उनसे बात करने की शिक्षा दी गई है । सर्वप्रथम अपने प्रभामंडल को सुदृढ़ बनाने का निर्देश दिया गया है । ध्यातव्य है कि मूल खासी संस्कृति कितनी विकसित रही होगी , जहाँ प्रभामंडल को मजबूत बनाने की बात की गई है-

भतीजे-भतीजियाँ, बच्चे और नाती-पोते, आओ, बताऊँगा बनाना अपना प्रभामंडल' शक्तिशाली मैं तुम्हें;

कुछ देर के लिए बैठो, सुनो और सोचो,

मेरे निर्देशों को, कोई गलती मत करो;

स्मरण रहे, तुम सब भाई और बहन जैसे हो, एक दूसरे से स्नेह करना मत भूलो;

हमेशा एक-दूसरे के साथ बात आदर से करो, 'मा-में'', 'मा-फा''' यानि 'तुम' कहने की मत आदत डालो ।

(खासी समुदाय में यह विश्वास है कि हर व्यक्ति के शरीर के चारों ओर प्रभामंडल होता है । उसके स्थूल शरीर के चारों और सूक्ष्म शरीर होता है, जिसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है ।

''मा-में' - पुरुषों के लिए,'' 'मा-फा' - महिलाओं के लिए प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है 'तुम' । इस शब्द का प्रयोग हम उम्र या अपनों से छोटों के लिए किया जाता है । अत: आदर और विनम्रता के साथ 'मा-फी' यानि 'आप' का प्रयोग करना चाहिए ।)

अगर कोई पुकारे तुम्हारा नाम केवल एक बार,
मत दो कभी जबाव, न दो उत्तर;
कम से कम दो बार उन्हें पुकारने दो तुम्हें,
तब मुड़ो पीछे और उत्तर दो उन्हें; पुकारा जाना केवल एक बार है अप्राकृतिक, हैं कहते,' कोई है शत्रु, जो कर रहा है कोशिश हानि पहुँचाने की, है ताक में; जो हिम्मत करता है पुकारने की केवल एक बार, पीटा जाना चाहिए उसे, देनी चाहिए चेतावनी उसे; रात के समय रहें सावधान विशेषकर, सजा मिलनी चाहिए अपराधी को कठोर; जाल में फँस कर न करें बुरा काम, दुनिया नहीं देगी साथ, नहीं हैं यह कोई नया नियम, है यह प्राचीन- आत्माएँ, शक्तियाँ ही केवल एक बार पुकारती है ।

यह संस्कृति प्रेम का सन्देश देती है और "मातृ देवो भव" एवं "पितृ देवो भव" को व्याख्यायित करती है । संसार में माता-पिता के ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा सकता है, क्योंकि उनके कारण ही हमारा वजूद है । उन्हें ईश्वर के समान माना है अत: वे सदैव पूजनीय हैं-

अगर तुम्हारा सामना हो दुर्भाग्य और बुरे समय से, कभी भी मत दो दोष माता-पिता को, इस दोष के लिए; यह सबसे है अपवित्र कार्य, इसे तुम बढ़ावा न दो, तुम्हें माना जा सकता है भ्रष्ट, तुम्हारा नाम होगा बदनाम; माता-पिता ईश्वर

जैसे हैं, स्मरण रखें, वे जिम्मेदार हैं तुम्हारे लिए, जब तक तुम छोटे थे; धन्यवाद दो कि वे तुम्हें लाएँ हैं, इस संसार में, प्यार और सम्मान करो उनका, इन सबके लिए; बड़ों के सम्मान के साथ-साथ ईश्वर के प्रति आस्था रखना अत्यंत आवश्यक है । इनके दिखाए गए मार्ग का अनुसरण करना चाहिए तथा वाणी एवं आचरण में विनम्रता बनाए रखना चाहिए-

हमेशा अपने माता-पिता का सम्मान करो,
जगाने पर और उसके बाद हाथ जोड़कर ईश्वर की प्रार्थना करो; अपने से बड़ों का आदर और अनुकरण करो,
जो भी तुम बोलो और जैसा व्यवहार करो;
फूहड़ और गन्दी बातों की उपेक्षा करो,
सदा अपनी बोलचाल और आचरण को सही रखो ।

अपनी वाणी पर संयम रखना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है । गलत शब्दों के प्रयोग ही अक्सर वैमन्यस्यता का कारण होते हैं । इसलिए संत कबीर ने कहा है- ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय । अपने माता-पिता के निर्देशों का पालन करना चाहिए-

न करें प्रयोग गलत शब्दों का प्रयोग, है यह एक पाप,

अपने से छोटों पर, आ जाएँगी बुरी आदतें, इसे मत आने दो अपने अन्दर;

न ही देना किसी को गाली और न अपमान करना चाहिए,

मार-पीट भी कभी नहीं करनी चाहिए;

अपने घर से बहुत दूर मत खेलो,

अपने आँगन या बगीचे में खेलो;

जब तुम्हारे माता-पिता बुलाएँ, उन्हें अनसुना न करो,

चाहे तुम रहो पास या दूर, तुरंत जाओ ।

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए बचपन से ही सुसंस्कारी बनना जरूरी है । इसके लिए बुजुर्गों ने बच्चों को आज्ञाकारी बनने की सीख दी है । बड़ों के उचित मार्गदर्शन से उनकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा और भविष्य सुरक्षित -

सदा आज्ञाकारी बनो, जिद मत करो,

सभी अच्छी सलाहों और निर्देशों को सुनो;

होगा तुम्हारा नाम ऊँचा और मिलेगा ईश्वर का आशीर्वाद इससे,

वर्तमान, भविष्य में और सदा के लिए।

मूल खासी संस्कृति एक ऐसी जीवन शैली है जिसमें छोटी से छोटी बातों पर ध्यान देने की बात कही गई है । जैसे मिल-बाँट कर खुशी से खाना, सदा बड़ों से माँग कर खाना, बाहर का खाना न खाना आदि और मूल खासी बुजुर्ग कहते हैं- 'मत खाएँ ठंडा और जूठा बचा हुआ खाना' क्योंकि बासी खाना सड़ जाता है और यह सेहत के लिए हानिकारक होता है । आज बढ़ते हुए फास्टफूड ने बच्चों से लेकर बड़ों के स्वास्थ्य को प्रभावित किया है अगर बचपन से ही हम ये गलत आदतें उनमें नहीं डालते तो सुरक्षित रहेंगे -

जब भी मिले तुम्हें खाना, हमेशा बाँट कर खाएँ,

अपनों के बीच, बिना किसी को भूलें;

जब भी तुम्हारे माता-पिता खाने के लिए तुम्हें दें,

सोचो और नखरा मत करो, खाओ प्रसन्नता से;

अगर चाहिए कोई व्यंजन विशेष तुम्हें,

अपनी मर्जी से मत खाओ, माँगो उनसे;

और अगर वह नहीं है घर में,

तो बाहर मत दौड़ो बिना परवाह किए उसे खरीदने के लिए;

क्योंकि तुम बन जाओगे शरारती और खराब हो जाएगी आदतें,

किसी भी चीज की अति अच्छी नहीं होती । कहा भी गया है - लालच बुरी बला है । लालच में आकर अधिक खाने से स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और इस सच्चाई से नहीं इंकार किया जा सकता कि भले ही लोग आपको और खाने के लिए आग्रह करें पर आपको बहुत अधिक खाते देख मन ही मन हँसेंगे-

कभी भी लालच कर जरुरत से ज्यादा मत खाओ,

पड़ोगे तुम बीमार और हो जाएगी सेहत खराब;

यहाँ तक कि चावल भी जरुरत से ज्यादा मत लो,

रुक जाएगी तुम्हारी बाढ़ और तुम नहीं कर पाओगे विकास;

अगर तुम ज्यादा लालच करके अधिक हो खाते,

लोग नहीं करेंगे तुम्हें पसंद, करेंगे नापसंद वास्तव में;

वे बातें करेंगे, फैलाएँगे और तुम्हारा मजाक उड़ायेंगे,

होगी स्थिति उस जैसी, नहीं मिला कभी खाना जिसे ।

मूल खासी नियमों के अनुसार प्रातः काल अमृत बेला में उठाने की शिक्षा दी गई है; इससे तन-मन-धन तीनों का लाभ होता है । जीवन में मेहनत और गतिशीलता ही उन्नति का रास्ता है । आज सम्पूर्ण भारत जिस स्वच्छता-अभियान की बात हम कर रहें हैं, मूल खासी संस्कृति में उनके पूर्वजों द्वारा पहले से कही गयी है और वे इस परम्परा को गंभीरता से निभाते आ रहे हैं । एशिया का सबसे स्वच्छ गाँव 'मौलिलोंग" मेघालय में ही स्थित है -

आदत डाले तड़के सुबह उठने की,
हो सके, जब कौवा कांव-कांव करता है;
जब होती है कुकड़ू मुर्गे की,
लड़के और लड़कियाँ करें अपने कार्य और मेहनत करें;
जैसे ही आप उठें, आग जलाएँ,
चुस्त बनें, गतिशील बनें, रोगी होने का बहाना न बनाएँ;
देखभाल करें अपने घर की, झाड़ें, व्यवस्थित करें,
अंदर-बाहर स्वच्छ करे और साफ करें;
तब अपने हाथ और चेहरे को भी धोएँ,
धन की देवी साथ होगी आपके;

मूल खासी संस्कृति में भी 'अतिथि देवो भव' माना जाता है । खासी घरों में 'पान' (Tympew) और सुपारी (Kwai) से अतिथियों का हमेशा सम्मान और स्वागत किया जाता है । पान गलत तरीके से मत मोड़ो- कहकर इसे सही ढंग से पेश करने की बात कही है । इसके साथ अतिथियों के लिए कहा गया है- 'जब तुम किसी के यहाँ घूमने जाओ, ज्यादा दिन मत रुको', इन सब सीखों द्वारा यह ज्ञात होता है कि लोकाचार और दैनिक जीवन हर कार्यों को कैसे सही तरीके से करें ? इसे बहुत सूक्ष्मता से समझाया गया है, जो बहुत प्रासंगिक हैं -

जब भी लोग आए और तुमसे मिलना,
उनका स्वागत करो और बैठाओ भी;
उनके बैठने के थोड़ी देर बाद,
उन्हें कुछ पान-सुपारी दो,
पान को गलत तरीके से मत मोड़ो,
जिसको भी तुम दो, यह गलती नहीं होनी चाहिए,
अगर वे चाहे तो कुछ चूना भी दो,
चाकू की नोक से कभी न दो,.....

मूल खासी संस्कृति आत्मनिर्भर बनने की सीख देती है, चाहे वह कृषि हो या व्यापार का क्षेत्र । यह नई-नई तकनीक सीखने की प्रेरणा देता है । ध्यातव्य है कि जनजातीय क्षेत्र होने के कारण यहाँ व्यापार आदि के क्षेत्र में उतना विकास नहीं हुआ था अतः देश के अन्य भागों से लोग यहाँ व्यापार करने आए थे अतः उनसे व्यापार आदि का आरम्भ हुआ । निम्न फव्वारे में विनम्रता के साथ नयी तकनीक अपनाने की सलाह दी गई है -

सीखो व्यापार करना और तुम लोग करो कुछ व्यापार,
उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से,
चाहे पूँजी थोड़ी कम हो,
अगर तुम करोगे कोशिश, तुम्हें हमेशा उसका मूल्य मिलेगा,
तुम्हें अपने प्लेट में खाने की कभी नहीं होगी कमी ।
अगर तुम अपना काम सीमित रखोगे, तो आलसी बन जाओगे ।
सीखो रखना अपना बही-खाता हमेशा सही,
रखो अपना दिमाग सही, जब तुम सोओ और जागो,
और सीखो उनलोगों से जो बाहर से आएँ हैं,
कैसे व्यवहार करना है ? क्या गलत और क्या सही है ?
संतुलित करो अपने विचारों और सोच को,
तुम तब तरक्की करोगे, सफल और वैभवशाली बनोगे।

निष्कर्षतः मूल खासी (जनजातीय) संस्कृति एक ऐसी विकसित जीवन-शैली है, जो अपने ऊँचे मूल्यों और आदर्शों के साथ आज भी मेघालय राज्य में जीवित है, जो इतने प्रासंगिक हैं कि लगता है कि आज की परिस्थितियों के लिए निर्मित हों । यद्यपि धर्म-परिवर्तन आदि के प्रहार ने मूल खासी संस्कृति को मानने वालों को अल्पसंख्यक बना दिया है तदपि पूर्वोत्तर के अन्य जनजाति संस्कृति की भाँति मिटी नहीं है कारण जिस संस्कृति में इतने उच्च आदर्श एवं नैतिक मूल्य हों, उसकी जड़ें उतनी ही मजबूत होंगी; आवश्यकता है इसके संरक्षण-संवर्धन एवं जागरूकता की ।

-डॉ. अनीता पंडा

दो पाठ्यक्रम के विचारणीय प्रश्न

शिक्षा सुधार की प्रक्रिया में नया विचार दसवीं के विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में भी दो तरह का वैसा ही पाठ्यक्रम बनाने पर विचार हो रहा है जैसा गणित विषय में पहले से ही है। दसवीं के गणित में कुछ विद्यार्थी बेसिक गणित में परीक्षा देते हैं और दूसरे स्टैंडर्ड गणित में। बेसिक गणित की तुलना में स्टैंडर्ड में अपेक्षाकृत कठिन सवाल होते हैं और यही विद्यार्थी आगे चलकर इंजीनियरिंग आदि की परीक्षा देने में समर्थ होते हैं। यहाँ तक कि 11वीं-12वीं में गणित पढ़ने की आजादी इन्हीं को दी जाती है। गणित के लिए इस बात पर कुछ हद तक सहमत हुआ जा सकता है, क्योंकि त्रिकोणमिति और कुछ दूसरी कठिन परिकल्पनाएं एक स्तर के बाद काम नहीं आती ।इसके पीछे के इतिहास को याद करें तो किसी वक्त 50 वर्ष पहले नवीं-दसवीं में लड़कियों के लिए गणित की जगह होम साइंस का विकल्प रहता था। हालांकि अब वक्त बदल गया है और समाज की समझ में भी यह बात आ गई है कि लड़कियाँ भी गणित और विज्ञान में उतनी ही प्रतिभा रखती हैं, जितनी लड़के । यही कारण है की ताजा आंकड़ों के अनुसार इंजीनियरिंग कॉलेज में 30% लड़कियां इंजीनियरिंग पढ़ रही है। मौजूदा सरकार ने तो एक ऐतिहासिक कदम बढ़ाते हुए आईआईटी में 20% सीट लड़कियों के लिए आरक्षित कर दी हैं।

लेकिन दो अलग तरह के पाठ्यक्रम की यही बात विज्ञान और सामाजिक विषयों के लिए सही नहीं होगी। विज्ञान और सामाजिक विज्ञान की शिक्षा ही बच्चों की समझ को मुकम्मल बनाती है और इसीलिए इन विषयों को दुनिया भर में दसवीं तक अनिवार्य रूप से सर्वश्रेष्ठ ढंग से पढ़ाया समझाया जाता है। शिक्षा की बुनियाद यही विषय बनाते हैं। विज्ञान जहां तर्कशील प्रयोगधर्मी बनाता है वहीं सामाजिक विज्ञान समाज देश दुनिया की राजनीति, अर्थशास्त्र और इतिहास की समझ पैदा करता है और यह हर बच्चे के लिए समान रूप से अनिवार्य होना ही चाहिए । ऐसी शिक्षा ही उन्हें स्वावलंबी बनाएगी और यही लोकतंत्र के हित में है। किसी भी रूप में इसे हल्का बनाने से शिक्षा का स्तर और गिर जाएगा।

इसके पीछे बच्चों पर पढ़ाई के बोझ को कम करने का विचार हावी लगता है। लेकिन यह सच्चाई से बहुत दूर है। इसे कोटा या दूसरी आत्महत्या से जोड़ना गलत होगा, क्योंकि उन बच्चों में मानसिक तनाव उनके समाज, माँ-बाप के दबाव और नंबरों की अंधी दौड़ है, इन विषयों का दबाव नहीं।

प्रेमपाल शर्मा

शिक्षा का अर्थ केवल क्लास पास करना या कुछ नंबर ज्यादा लाना ही नहीं होता, उसे ऐसा मुकम्मल नागरिक बनाना होता है जैसे ब्रिटेन की शिक्षा में। उनसे शब्द उधार लें तो 15 वर्ष की उम्र तक विद्यार्थी पूरी दुनिया में घूमने और संवाद करने की क्षमता रखता हो। यह विज्ञान और दूसरे विषयों को और बेहतर ढंग से पढ़ने से ही संभव हो सकता है, पाठ्यक्रम की काट-छांट से नहीं ।

गणित के अनुभव से ही सबक ले तो चौंकाने वाले तथ्य सामने आते हैं। दिल्ली के निजी महंगे स्कूलों में सभी बच्चे जहाँ स्टैंडर्ड गणित पढ़ते हैं, सरकारी स्कूलों में ज्यादातर बच्चे बेसिक कारण : स्टैंडर्ड गणित वाले अमीर बच्चों से आगे इंजीनियर, डॉक्टर बनने-पढ़ने की उम्मीद की जाती है, तो वहीं सरकारी स्कूलों के प्रति एक उदासीन रवैया है। यदि विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में भी यह कर दिया तो सरकारी स्कूलों के प्रति नजरिया और गिर जाएगा। जहाँ अंग्रेजी ने प्राइवेट स्कूल और निजी शिक्षा को बढ़ाने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई है यह कदम भी सरकारी स्कूलों को और कमजोर कर देगा ।सरकारी स्कूलों में सबसे गरीब तबका ही देश के ज्यादातर स्कूलों में पढ़ रहा है, क्योंकि पढ़ाई के अलावा वे रोजाना खेती-किसानी और दूसरे व्यवसाय में भी लगे होते हैं। अपने मां-बाप की मदद करते और अपने जीवनयापन के संघर्ष में हमें उनकी शिक्षा को और बेहतर बनाने की जरूरत है, ना कि और कमजोर करने की।

इससे भी बड़ा प्रश्न यह है कि क्या उच्च शिक्षा में आगे बढ़ने के लिए इन बच्चों को मदद मिलेगी ? हो सकता है जैसे अंग्रेजी, सरकारी नौकरियों में अपनी ज्यादा हैसियत रखती है वैसे ही ऐसे दोहरी पाठ्यक्रम की वजह से सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले और पीछे रह जाएंगे। यह उस विचार को भी धक्का देता है जब हम दौलत सिंह कोठारी आयोग की समान शिक्षा की बात नई शिक्षा नीति में कर रहे हैं और जिसके तहत नीट परीक्षा, आई आई टी परीक्षा या पिछले दिनों केंद्रीय विश्वविद्यालय में समान

प्रवेश परीक्षाएँ शुरू की गई है। इसका एक और दुष्परिणाम हो सकता है। पिछले दिनों हमारे देश के निजी स्कूलों से निकले इंजीनियरों की क्षमता और स्किल पर दुनिया भर में प्रश्न उठ रहे हैं कि उनमें से 70% के पास डिग्री होने के बावजूद, वे सक्षम नहीं हैं । तो ऐसी चुनौती के बीच तो हमें अपने पाठ्यक्रमों को और बेहतर करने की जरूरत है । नई शिक्षा नीति में इस बात पर जोर तो दिया गया है, लेकिन अभी उसके परिणाम आने बाकी हैं। ना प्राइमरी स्तर पर अपनी भाषाओं में पढ़ाई में विशेष प्रगति हुई और ना स्कूली स्तर पर व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में 11वीं-12वीं और दूसरे स्तरों पर अपनी मर्जी से विषय लेने की जो बात 4 साल पहले हुई थी, वहाँ भी हम कदम नहीं बढ़ा पाए। लौट कर फिर वही ढाँचा यथावत जारी है, बल्कि उसमें और गिरावट आई लगती है जिसका प्रमाण देश से बाहर जाकर पढ़ने वालों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि है, तो दूसरी तरफ दुनिया भर में आत्महत्या करने वाले सबसे बड़ी संख्या भारत के विद्यार्थियों की है । इसे विकास के मॉडल में एक बड़ी त्रासदी ही कहा जाएगा।

आज इसरो की सफलता या इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, आईआईटी आदि से निकले बच्चों की सफलता का लोहा दुनिया भर के देश मानते हैं, तो कहीं ना कहीं इसमें उन संस्थानों का योगदान रहा है । इसलिए हमें उन आजमाई हुई नीतियों के कार्यान्वयन पर ज्यादा जोर देने की जरूरत है, बजाय बच्चों और स्कूलों में भेदभाव के पाठ्यक्रमों को बढ़ावा देने की। शिक्षा के बदलाव भावी पीढ़ियों को भी प्रभावित करते हैं । 50 के दशक में अंतरिक्ष विज्ञान में जब रूस स्पूतनिक को भेज कर आगे बढ़ता नजर आया, तो अमेरिका ने 60 के दशक में ही अपनी विज्ञान नीति को ऐसा आमूलचूल बदला कि आज तक वह अग्रणी बना हुआ है। यूरोप के भी अनुभव ऐसे रहे हैं और इसीलिए वहाँ ऐसे सैकड़ों वैज्ञानिक हुए हैं जिन्होंने 30 वर्ष की उम्र तक अपनी सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक खोज की है।

ऐसे रोज-रोज के सभी बदलाव शिक्षा में ऐसी जटिलताएँ पैदा कर रहे हैं, जिनके कार्यान्वयन में समूचा तंत्र भी शिक्षा के असली मुद्दों से दूर होता जा रहा है। मनमोहन सिंह की सरकार ने भी बिना परीक्षा दिए आठवीं क्लास तक पास करने की ऐसी ही लोक लुभावना नीति लागू की थी, जिसके परिणाम गरीब लोगों के लिए बहुत अच्छे नहीं रहे। वक्त आ गया है कि हम 21वीं सदी के अनुरूप अपनी विज्ञान और सामाजिक शिक्षा को दुनिया भर की शिक्षण पद्धतियों सीखते हुए ऐसा बनाएं कि दुनिया भर के लोग विश्व गुरु भारत में पढ़ने के लिए लालयित हों !

-प्रेमपाल शर्मा
96, कला विहार अपार्टमेंट, दिल्ली

नोट: हमें खेद है कि यह लेख पिछले अंक (जुलाई-दिसम्बर 2024) में त्रुटिवश प्रेमलता शर्मा के नाम व फोटो के साथ छप गया था। अब त्रुटि सुधारी ली गई है।

तेजपुर केन्द्रीय विश्वविद्यालय (असम)
हिन्दी विभाग के शिक्षकों से शिष्टाचार भेंट

युवा मत

कॉरपोरेट जगत में हिन्दी भाषा के प्रति उदासीनता

सुनीता मिश्रा

भाषा केवल संवाद का साधन नहीं, बल्कि संस्कृति, सभ्यता और पहचान का दर्पण होती है। भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी का स्थान विशेष है। यह न केवल सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है, बल्कि इसे संविधान के अनुच्छेद 343 में राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। परंतु दुखद तथ्य यह है कि देश की बहुसंख्यक जनता हिन्दी बोलने और समझने के बावजूद कॉरपोरेट जगत में हिन्दी के प्रति उपेक्षा और उदासीनता देखने को मिलती है । आज भी अधिकांश बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, निजी संस्थान और यहाँ तक कि भारतीय कॉरपोरेट घराने अपने कार्य-व्यवहार, विज्ञापन, तकनीकी संवाद और बैठकों में अंग्रेजी को प्राथमिकता देते हैं । हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है । भारत की लगभग 44% जनसंख्या इसे अपनी मातृभाषा मानती है और शेष अधिकांश भारतीय भी इसे दूसरी भाषा के रूप में बोल-समझ सकते हैं । हिन्दी, फिल्मों, साहित्य, समाचार माध्यमों और जनसंचार के जरिए विश्व-स्तर पर अपनी पहचान बना चुकी है । परंतु जब हम कॉरपोरेट संस्कृति की बात करते हैं तो वहाँ हिन्दी की स्थिति हाशिए पर नजर आती है । नियुक्ति पत्रों, कार्य-निर्देशों, ई-मेल, मीटिंग्स और प्रस्तुतियों में अंग्रेजी का प्रभुत्व स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । अगर हम बात वर्तमान स्थिति की करे तो कॉरपोरेट जगत में हिन्दी की उपेक्षा हर स्तर पर देखी जा सकती है । कॉरपोरेट सेक्टर का तेजी से बढ़ता वैश्वीकरण हिन्दी के प्रति उदासीनता को और प्रबल करता है। देश की बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ और आईटी क्षेत्र के अधिकांश संस्थान अंग्रेजी को 'प्रोफेशनलिज्म' की निशानी मानते हैं । बड़े-बड़े मॉल, बैंक, बीमा कंपनियाँ और ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म तक उपभोक्ताओं से संवाद के लिए अंग्रेजी का ही उपयोग करते हैं ।

नियुक्ति प्रक्रिया में अंग्रेजी ज्ञान को अनिवार्य शर्त बना दिया जाता है । कॉर्पोरेट ट्रेनिंग और प्रेज़ेंटेशन अंग्रेजी में ही होते हैं। दस्तावेज और अनुबंध प्राय: अंग्रेजी में तैयार किए जाते हैं । विज्ञापन और ब्रांडिंग के क्षेत्र में हिन्दी को कमतर आँका जाता है। यही कारण है कि हिन्दी भाषी युवा भी अंग्रेजी बोलने की होड़ में अपनी मातृभाषा से दूरी बना लेते हैं । अगर ऐसी उपेक्षा का कारण तलाश करेंगे तो पता चलता है कि अंग्रेजी का वैश्विक प्रभाव सबसे बड़ा कारण है । अंग्रेजी को 'इंटरनेशनल लैंग्वेज ऑफ बिजनेस' माना जाता है । विदेशी ग्राहकों, निवेशकों और साझेदारों से संवाद की सुविधा के कारण कंपनियाँ अंग्रेजी को प्राथमिकता देती हैं। इसके इतर शिक्षा प्रणाली भी हिन्दी की उपेक्षा के प्रमुख कारणों में एक है उच्च शिक्षा विशेषकर तकनीकी और प्रबंधन शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से होती है । एमबीए, इंजीनियरिंग और आईटी के छात्र अंग्रेजी में दक्ष हो जाते हैं, लेकिन हिन्दी के प्रयोग की आदत नहीं डाल पाते। लोग प्रतिष्ठा और आधुनिकता का दिखावा करने के लिए भी हिन्दी को कमतर आंकते है । कॉरपोरेट जगत में अंग्रेजी बोलना स्टेटस सिंबल माना जाता है । हिन्दी में संवाद करने वाले को अक्सर कम शिक्षित या कम पेशेवर समझ लिया जाता है । प्रौद्योगिकी और शब्दावली की कमी भी बड़े कारणों में शुमार है । तकनीकी शब्दों का हिन्दी रूप अपेक्षाकृत कठिन और कम प्रचलित है। जैसे 'सॉफ्टवेयर', 'नेटवर्किंग', 'मैनेजमेंट' आदि अंग्रेजी शब्द अधिक सहज लगते हैं । यद्यपि हिन्दी को राजभाषा का दर्जा मिला है, परंतु सरकारी दफ्तरों में भी अंग्रेजी का वर्चस्व बना रहता है । जब सरकारी स्तर पर हिन्दी का प्रयोग सीमित है, तो कॉरपोरेट जगत में इसे बढ़ावा मिलना और कठिन हो जाता है ।

कॉरपोरेट क्षेत्र में हिन्दी की उपेक्षा केवल भाषा का नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति का भी प्रश्न है । इस उपेक्षा के कारण सांस्कृतिक अलगाव भी बढ़ रहा है । हिन्दी की उपेक्षा से भारतीयता और अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूरी बढ़ती है । कर्मचारी अपनी भाषा में संवाद करने से झिझकते हैं। कई योग्य और प्रतिभाशाली युवाओं को केवल अंग्रेजी न आने के कारण अवसर नहीं मिल पाते । इससे ग्रामीण और छोटे कस्बों के छात्रों के लिए कॉरपोरेट जगत में प्रवेश कठिन हो जाता है । भारत की बड़ी आबादी हिन्दी भाषी है । जब कंपनियाँ विज्ञापन और उत्पाद संबंधी जानकारी अंग्रेजी में देती हैं तो उपभोक्ता पूरी तरह जुड़ नहीं पाते । अंग्रेजी जानने वाले कर्मचारियों को ऊँचे पद और सम्मान मिलता है, जबकि हिन्दी जानने वाले पीछे रह जाते हैं। यह सामाजिक और आर्थिक असमानता को बढ़ाता है। कारपोरेट जगत में हिन्दी के प्रति उदासीनता एक चिंताजनक विषय है । भारत में हिन्दी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा होने के बावजूद, कई कारपोरेट कंपनियों में इसका उपयोग कम होता जा रहा है । इस उदासीनता के कारणों में से एक यह है कि अंग्रेजी को व्यवसाय और प्रौद्योगिकी की भाषा माना जाता है। वैश्विक बाजार में अंग्रेजी का उपयोग अधिक होता है, जिससे कंपनियों को लगता है कि हिन्दी का उपयोग करने से उनकी पहुँच सीमित हो जाएगी । इसके परिणामस्वरूप, कई कंपनियों में हिन्दी का उपयोग कम होता जा रहा है, जिससे कर्मचारियों और ग्राहकों के बीच भाषाई और सांस्कृतिक दूरी बढ़ रही है।

इससे कर्मचारियों की संतुष्टता और उत्पादकता भी प्रभावित हो सकती है। हिन्दी के प्रति उदासीनता के कारण कंपनियां संभावित ग्राहकों और बाज़ार हिस्सेदारी से भी चूक सकती हैं। हिन्दी भाषी बाज़ार की अनदेखी करके, कंपनियां अपने व्यवसाय को बढ़ाने के अवसरों से वंचित हो सकती हैं ।

कंपनियों को इस समस्या का समाधान करने के लिए, हिन्दी के महत्व को समझना और इसके उपयोग को बढ़ावा देना चाहिए । इससे न केवल कर्मचारियों की संतुष्टता बढ़ेगी, बल्कि बाजार में भी कंपनी की पहुंच बढ़ सकती है । कंपनियों को हिन्दी में प्रशिक्षण कार्यक्रम, शैक्षिक सामग्री और ग्राहक सेवा प्रदान करनी चाहिए । हिन्दी के प्रति उदासीनता को दूर करके, कंपनियां अपने व्यवसाय को बढ़ा सकती हैं और भारतीय बाजार में अपनी स्थिति सुदृढ़ कर सकती हैं । कॉरपोरेट जगत में भाषा का महत्त्व केवल संचार का साधन भर नहीं है, बल्कि यह पहचान, संस्कृति और बाज़ार से जुड़ा हुआ पहलू भी है । भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी सर्वाधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है, फिर भी कॉरपोरेट जगत में इसके प्रति अपेक्षाकृत उदासीनता देखने को मिलती है । अधिकांश कंपनियाँ अंग्रेजी को ही मुख्य कार्य-भाषा मानती हैं और संवाद, रिपोर्टिंग, प्रेजेंटेशन तथा आधिकारिक पत्राचार में हिन्दी का प्रयोग बहुत सीमित रह जाता है ।

इस उदासीनता के पीछे कई कारण हैं । सबसे बड़ा कारण यह है कि अंग्रेजी को ग्लोबल बिजनेस की भाषा माना जाता है, जिसके कारण कंपनियाँ इसे प्रतिस्पर्धा और प्रतिष्ठा से जोड़कर देखती हैं । दूसरा कारण यह है कि कॉरपोरेट में कार्यरत अधिकांश उच्च-शिक्षित कर्मचारी अंग्रेजी माध्यम से पढ़े होते हैं, जिससे उनकी सोच और कार्यशैली भी अंग्रेजी पर आधारित होती है । इसके अतिरिक्त, कंपनियाँ यह मानकर चलती हैं कि हिन्दी प्रयोग से उनकी 'प्रोफेशनल इमेज' पर प्रभाव पड़ सकता है । हालाँकि, बाजार की वास्तविकता यह बताती है कि भारत में उपभोक्ताओं का विशाल वर्ग हिन्दी भाषी है । विज्ञापन और मार्केटिंग अभियानों में हिन्दी का प्रभाव बहुत गहरा होता है, और इसी कारण बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उत्पादों का प्रचार हिन्दी में करती हैं। यह विरोधाभास दर्शाता है कि जहाँ ग्राहकों तक पहुँचने के लिए हिन्दी को अपनाया जाता है, वहीं आंतरिक कार्य-प्रणाली में उसे नजरअंदाज कर दिया जाता है ।

अतः जरूरी है कि कॉरपोरेट जगत हिन्दी को केवल औपचारिक भाषा न मानकर कार्यस्थल पर भी प्रोत्साहित करें । हिन्दी के प्रयोग से न केवल कर्मचारियों की भागीदारी और सहजता बढ़ेगी बल्कि यह भारतीय संस्कृति और पहचान को भी मजबूती देगा । कॉरपोरेट क्षेत्र को चाहिए कि वह अंग्रेजी के साथ हिन्दी को भी समान महत्त्व देकर द्विभाषिक कार्य-संस्कृति विकसित करे । हालाँकि स्थिति पूरी तरह निराशाजनक नहीं है । कुछ कंपनियाँ उपभोक्ताओं से जुड़ाव के लिए हिन्दी का प्रयोग कर रही हैं । मोबाइल कंपनियाँ अपने ऐप्स में हिन्दी विकल्प देती हैं । गूगल, फेसबुक, ट्विटर आदि ने हिन्दी इंटरफेस उपलब्ध कराया है । कई विज्ञापन कंपनियाँ उपभोक्ता आधार को ध्यान में रखकर हिन्दी में प्रचार करती हैं । सरकारी उपक्रम जैसे भारतीय जीवन बीमा निगम (LIC), स्टेट बैंक ऑफ इंडिया आदि अपने ग्राहकों से हिन्दी में संवाद को महत्त्व देते हैं । समाधान और सुझाव हिन्दी को कॉरपोरेट जगत में उसका उचित स्थान दिलाने के लिए बहुआयामी प्रयासों की आवश्यकता है । शिक्षा और प्रशिक्षण में सुधार प्रबंधन और तकनीकी शिक्षा में हिन्दी माध्यम को भी बढ़ावा दिया जाना चाहिए । कॉरपोरेट ट्रेनिंग में द्विभाषिकता को प्रोत्साहित करना होगा । सरकार को राजभाषा नीति को सख़्ती से लागू करना चाहिए । सरकारी कंपनियाँ और विभाग हिन्दी में कार्य करें तो निजी क्षेत्र भी प्रेरित होगा । तकनीकी शब्दावली का सरलीकरण

कठिन हिन्दी शब्दों की बजाय सरल और प्रचलित रूप विकसित किए जाएँ, ताकि कर्मचारी सहज रूप से हिन्दी का उपयोग कर सकें । ब्रांडिंग और विज्ञापन में हिन्दी का प्रयोग उपभोक्ता से जुड़ाव के लिए हिन्दी में विज्ञापन प्रभावी सिद्ध हो सकते हैं । कंपनियों को इसे अवसर के रूप में देखना चाहिए । मानसिकता में बदलाव सबसे महत्त्वपूर्ण है कि हिन्दी बोलने वालों को हीन भावना से मुक्त होना होगा । भाषा को सम्मान मिलेगा तभी जब हिन्दी भाषी समाज स्वयं गर्वपूर्वक इसका प्रयोग करे ।

कॉरपोरेट जगत में हिन्दी के प्रति उदासीनता केवल भाषाई नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक चुनौती है । अंग्रेजी का महत्त्व नकारा नहीं जा सकता, परंतु अपनी मातृभाषा और राजभाषा हिन्दी की उपेक्षा उचित नहीं है । यदि हिन्दी को सम्मानजनक स्थान दिया जाए, तो न केवल यह हमारे सांस्कृतिक गौरव को पुनः स्थापित करेगी, बल्कि व्यवसायिक दृष्टि से भी लाभकारी सिद्ध होगी । इसलिए समय की माँग है कि कॉरपोरेट जगत हिन्दी को बोझ नहीं, बल्कि अवसर के रूप में देखे । हिन्दी के प्रयोग से कंपनियाँ आम उपभोक्ता से बेहतर जुड़ पाएँगी, नए बाजार हासिल करेंगी और एक सशक्त सांस्कृतिक संदेश भी देंगी। हिन्दी केवल भाषा नहीं, बल्कि भारतीय अस्मिता की धड़कन है ।

-सुनीता मिश्रा
शोधार्थी, पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग
छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

रिपोर्ट

पूर्वोत्तर हिन्दी साहित्य अकादमी ने मनाया दसवाँ स्थापना दिवस

रीता सिंह 'सर्जना'

तेजपुर: पूर्वोत्तर हिन्दी साहित्य अकादमी असम (भारत) द्वारा मारवाड़ी पंचायती धर्मशाला में दो दिवसीय कार्यक्रम के साथ राष्ट्रीय संगोष्ठी, बहुभाषी कवि सम्मेलन तथा सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। सुधाकर पाठक की अध्यक्षता में कार्यक्रम का संचालन मनीषा पॉल तथा पूजा सुनुवार ने किया। मुख्य अतिथि के रूप में असम नेपाली साहित्य सभा के अध्यक्ष डॉ. चिंतामणि शर्मा मंच पर विराजमान थे। उनके कर कमलों से दीप प्रज्ज्वलित किया गया तथा काव्याश्री ने अपनी मधुर आवाज में सरस्वती वंदना किया। संस्थापिका रीता सिंह 'सर्जना' ने सभी अतिथियों का स्वागत करते हुए संस्था के बारे जानकारी देते हुए कहा कि पूहिंसाअ ने सदैव हिन्दी भाषा के जरिए अपनी भाषा साहित्य संस्कृति का संरक्षण किया है। अकादमी के दसवें स्थापना दिवस पर मुख्य अतिथि डॉ चिंतामणि शर्मा ने अकादमी के कार्य को सराहते हुए कहा अकादमी सही ट्रेक पर चल रही है। दिल्ली से पधारे हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष सुधाकर पाठक ने हिन्दीत्तर प्रदेश क्षेत्र में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में लगी अकादमी के कार्यों की भूरी-भूरी प्रशंसा की। इस अवसर पर निशा मित्तल और दिव्या राजेश्वरी द्वारा संपादित 'कहे-अनकहे शब्दों का कैनवास'।

साझा कहानी संकलन का लोकार्पण किया गया तथा सारस्वत सम्मान समारोह-2025 का सम्मान कला/साहित्य/ पत्रकारिता एवं सामाजिक योगदान हेतु प्रदान किए गए। प्रथम दिवस के कार्यक्रम में हाल ही में दिवंगत हुए असम के जाने-माने नेपाली साहित्यकार पद्मश्री लील बहादुर क्षत्री, विशिष्ट साहित्यकार एवं पत्रकार रविकांत नीरज और आतंकी हमले में अपना जीवन खोने वाले यात्रियों के शांति हेतु 1 मिनट का मौन रखा गया। तेजपुर के कलाकार राजेश सरकार की 29 पेंटिग की प्रदर्शनी रखी गई। प्रोफेसर स्नेहलता नेगी ने इसका उद्घाटन किया। कार्यक्रम के दूसरे सत्र में राष्ट्रीय संगोष्ठी 'भारतीय भाषा और लोक साहित्य' विषय पर रखा गया जहाँ दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रो. स्नेह लता नेगी संगोष्ठी अध्यक्ष, बीज वक्ता के रूप में राजभाषा अधिकारी गुम्पी लोम्बी ङूसो, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरूणाचल प्रदेश से विराजमान थी तो वही सह-संयोजक के रूप में डॉ. गोमा देवी शर्मा, तेजपुर विश्वविद्यालय उपस्थित थी। मुख्य अतिथि के रूप हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष, दिल्ली से मंच पर आसीन थे। इसके बाद बहुभाषी कवि सम्मेलन रखा गया जहाँ देश के कई जाने-माने कवियों ने हिस्सा लिए। दिल्ली से किशोर श्रीवास्तव, सुधाकर पाठक, प्रो. स्नेहलता नेगी, विनोद पाराशर, तूलिका सेठ, कानपुर से डॉ जय प्रकाश प्रजापति 'अंकुश कानपुरी', गुवाहाटी से दिल्स लक्ष्मीन्द्र सिन्हा, किशोर जैन, विश्वनाथ से हरि लुईटेल, मनिषा पॉल, अरूणाचल प्रदेश से कागो मादो, तेजपुर से उषाकिरण टिबड़ेवाल, मिनुमा बोड़ो, दीपक रिजाल, सागर सापकोटा, निभा दास, मौसमी महंत, रिजू देवी, चित्रामणि बोड़ो,रीता सिंह 'सर्जना' ने काव्य पाठ किया। अंत में सांस्कृतिक संध्या का आयोजन किया गया। जहाँ बिहू नृत्य सहित शास्त्रीय नृत्य-सत्रिया नृत्य तथा नेपाली लोकनृत्य पेश किए गए। किशोर श्रीवास्तव ने नेपाली गाने गाकर सबका ध्यान आकृष्ट किया। दूसरे दिन समापन समारोह पर कला साधक विनोद खनाल और समाज सेविका मिनुमा बोड़ो को अभिनंदन किया गया। दो स्मृति सम्मान क्रमशः श्रीमती वसुन्धरा देवी शर्मा को नीलिमा देवी स्मृति सम्मान-2025 एवं नगद राशि 5100/- उनके सामाजिक और साहित्यिक योगदान हेतु प्रदान किया गया। बोड़ो और हिन्दी भाषा के योगदान के लिए बोड़ो कथाकार जयश्री बोड़ो को तेज बहादुर सुनुवार स्मृति सम्मान-2025 एवं नगद राशि 5100/- से सम्मानित किया गया। हिन्दी गौरव सम्मान क्रमशः किशोर श्रीवास्तव और सुधाकर पाठक को, हिन्दी सेवी सम्मान डॉ. नंदिता दत्त को, हिन्दी मित्र सम्मान-किशोर जैन को, पूर्वोत्तर सृजन सम्मान क्रमशः विनोद पाराशर, डॉ. जय प्रकाश प्रजापति 'अकुंश कानपुरी' और मानव डे को, पूर्वोत्तर सृजन कला सम्मान राजेश सरकार तूलिका सेठ को, पूर्वोत्तर सारस्वत सम्मान क्रमशः प्रो. स्नेहलता नेगी, सुवर्णलता महन्त, लक्ष्मण अधिकारी को पूर्वोत्तर पत्रकारिता रत्न सम्मान क्रमशः जयप्रकाश अग्रवाल और पुलक डेका को प्रदान किया गया। इसी के साथ हिन्दी दिवस पर आयोजित विभिन्न प्रतियोगिता के विजेताओं को भी सम्मानित किया गया। आलेख लेखन में प्रथम कागो मादो और द्वितीय स्थान पर डॉ. नंदिता दत्त को पुरस्कृत किया गया। अंत में संस्थापक अध्यक्ष रीता सिंह सर्जना ने अपने उद्‌बोधन में अकादमी के दस वर्ष के सफर में सफलतापूर्वक साथ चलने वाले सभी साथियों को इसका श्रेय दिया एवं उपस्थित सभी का धन्यवाद ज्ञापित किया। राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

पूर्वोत्तर हिन्दी साहित्य अकादमी ने मनाया दसवाँ स्थापना दिवस के चित्र

रिपोर्ट

'होली मंगल मिलन एवं काव्य उत्सव' एवं 'सामाजिक सौहार्द व सहिष्णुता का पर्व होली' परिचर्चा का आयोजन सम्पन्न

गरिमा संजय

भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति के संरक्षण व संवर्धन के लिए समर्पित स्ववित्तपोषित संस्था 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' द्वारा रविवार, 16 मार्च, 2025 को रोहिणी स्थित अकादमी के सभा-कक्ष में 'होली मंगल मिलन एवं काव्य उत्सव' का भव्य आयोजन किया संपन्न किया। यह आयोजन होली के पर्व के अवसर पर सामाजिक सौहार्द, सहिष्णुता और साहित्यिक रस के समन्वय का एक अनुपम उदाहरण था। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली के साथ-साथ अन्य राज्यों से बड़ी संख्या में शिक्षाविदों, कवियों और कलाकारों ने इस समारोह में उत्साहपूर्वक सहभागिता की, जिसने सभागार को एक सांस्कृतिक और साहित्यिक उत्सव का केंद्र बना दिया।

कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्ज्वलन के साथ हुआ। हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने अपने स्वागत वक्तव्य में होली के सामाजिक और सांस्कृतिक महत्त्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि होली का यह पर्व न केवल रंगों का उत्सव है, बल्कि यह सामाजिक समरसता, प्रेम और एकता का संदेश भी देता है। इसके पश्चात, अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने आमंत्रित अतिथियों और अकादमी से जुड़े नए सदस्यों का हार्दिक स्वागत किया। इस सत्र में 'नगर निगम शिक्षक प्रकोष्ठ' और 'युवा प्रकोष्ठ' के पदाधिकारियों को उनके परिचय पत्र वितरित किए गए, साथ ही उन्हें अंगवस्त्र पहनाकर सम्मानित किया गया। यह औपचारिक स्वागत न केवल अकादमी के संगठनात्मक ढांचे को सुदृढ़ करने का प्रतीक था, बल्कि नए सदस्यों के प्रति संस्था की प्रतिबद्धता को भी दर्शाता था। इस सत्र का संचालन अकादमी कार्यकारिणी की वरिष्ठ सदस्य गरिमा संजय ने किया।

द्वितीय सत्र में 'सामाजिक सौहार्द एवं सहिष्णुता का पर्व होली' विषय पर एक विचारोत्तेजक परिचर्चा आयोजित की गई। इस सत्र में गुरु गोविंद सिंह इंद्रप्रस्थ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉ. पवन विजय ने अपने गहन और प्रेरक विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने होली को भारतीय संस्कृति के एक ऐसे पर्व के रूप में चित्रित किया, जो सामाजिक भेदभाव को मिटाकर सभी को एक रंग में रंग देता है। डॉ. विजय ने कहा कि होली का पर्व न केवल उत्सव का प्रतीक है, बल्कि यह सामाजिक एकता, सहिष्णुता और परस्पर सम्मान को बढ़ावा देने का एक सशक्त माध्यम भी है। उन्होंने यह भी जोड़ा कि भारतीय भाषाएँ और साहित्य इस सौहार्द को और सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस सत्र का संचालन अकादमी की कार्यकारिणी के युवा और उत्साही सदस्य श्री राजकुमार श्रेष्ठ ने किया। उनके कुशल संचालन ने परिचर्चा को एक व्यवस्थित और विचारोत्तेजक दिशा प्रदान की। श्रोताओं ने डॉ. विजय के विचारों को ध्यानपूर्वक सुना और उनके तर्कों से लाभान्वित हुए।

कार्यक्रम के अंतिम सत्र में काव्य उत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें ब्रज के रसिया, लोकगीत और हास्य-व्यंग्य की रचनाओं ने सभागार को रस और भाव से सराबोर कर दिया। कवियों ने होली के रंग, प्रेम और सामाजिक समरसता को अपनी रचनाओं के केंद्र में रखा। ब्रज के रसिया गीतों ने होली की पारंपरिक भावना को जीवंत किया, जिसमें राधा-कृष्ण के प्रेम और भक्ति की झलक देखने को मिली। लोकगीतों ने भारतीय ग्रामीण संस्कृति की जीवंतता को उजागर किया, जबकि हास्य-व्यंग्य की रचनाओं ने सामाजिक विसंगतियों पर हल्के-फुल्के अंदाज में कटाक्ष कर दर्शकों को हँसने-हँसाने का अवसर प्रदान किया।

काव्य उत्सव में शामिल कवियों में प्रोफेसर रवि शर्मा, डॉ. सुधा शर्मा, श्री किशोर श्रीवास्तव, डॉ. ओम सपरा, श्री विनीत पांडे, डॉ. राजेश श्रीवास्तव, सुश्री पूनम पांडे, सुश्री शशि किरण, डॉ. पूर्णिमा अग्रवाल, सुश्री ज्योति जुल्का और सुश्री उषा रानी ने अपनी रचनाओं से दर्शकों का मन मोह लिया। इनके अतिरिक्त डॉ. कविता मल्होत्रा, सुश्री पूजा श्रीवास्तव, सुश्री नीलम बावरामन, श्री नरेंद्र कुमार मस्ताना, सुश्री नेहा गुप्ता, श्री रजनीश गोयल, सुश्री दीपा गुप्ता, श्री अमित गुप्ता, श्री सानिध्य गुप्ता, श्री आदर्श पांडे, सुश्री सोनम सायरा और श्री आदित्य भट्टर ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से होली के विविध रंगों को प्रस्तुत किया। इन रचनाओं में प्रेम, हास्य, और सामाजिक संदेशों का सुंदर समन्वय था, जिसने सभागार में एक उत्सवपूर्ण माहौल बनाया।

कार्यक्रम के अंत में अकादमी के अध्यक्ष श्री सुधाकर पाठक ने आए हुए सभी अतिथियों का आभार व्यक्त किया तथा अकादमी की भावी योजनाओं के संबंध में भी जानकारी दी। इस सत्र का संचालन सामूहिक रूप से कार्यकारिणी के वरिष्ठ सदस्य श्री विनोद पाराशर एवं डॉ. वनिता शर्मा ने किया।

‘होली मंगल मिलन एवं काव्य उत्सव’ एवं ‘सामाजिक सौहार्द व सहिष्णुता का पर्व होली’ परिचर्चा के चित्र

रिपोर्ट

'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' एवं 'हम सब साथ साथ' के संयुक्त तत्त्वावधन में तीन दिवसीय श्रावस्ती : पर्यटन एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजन सम्पन्न

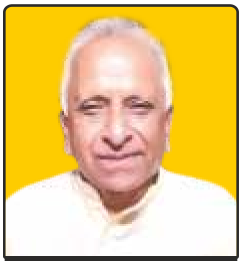
विजय कुमार शर्मा

श्रावस्ती, उत्तर प्रदेश के बलरामपुर जिले में स्थित, धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान है । महाभारत काल में यह कोसल राज्य के रूप में विख्यात था, और रामायण में भगवान राम के वनवास से इसका उल्लेख जुड़ा है । आधुनिक काल में श्रावस्ती भगवान बुद्ध की नगरी के रूप में विश्व प्रसिद्ध है, जहाँ उन्होंने महत्त्वपूर्ण उपदेश दिए और "श्रावस्ती चमत्कार", "महान चमत्कार" व "जुड़वां चमत्कार" जैसे चमत्कार किए, जो बौद्ध साहित्य, मूर्तियों और राहत चित्रों में अमर हैं । यह स्थान केवल बौद्ध धर्म तक सीमित नहीं, बल्कि हिंदू और जैन धर्म के लिए भी पवित्र है, जिनकी प्राचीन पांडुलिपियों में इसका जिक्र है । पुरातात्विक उत्खनन से प्राप्त बौद्ध, हिंदू और जैन कलाकृतियाँ व स्मारक इसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को उजागर करते हैं ।

धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व के रूप में प्रसिद्ध श्रावस्ती/बलरामपुर (उत्तर प्रदेश) में 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमीश एवं 'हम सब साथ साथ' के संयुक्त तत्त्वावधान में तीन दिवसीय (22 - 24 नवंबर) 11वां अंतर्राष्ट्रीय सोशल मीडिया मैत्री सम्मेलन का आयोजन सम्पन्न किया गया । यह तीन दिवसीय आयोजन पर्यटन, साहित्य और संस्कृति के समन्वय का एक अनूठा प्रयास था, जिसमें देश के विभिन्न राज्यों से साहित्यकारों, कवियों, लेखकों और कलाकारों ने भाग लिया । इस आयोजन का उद्देश्य सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देना, साहित्यिक रचनाओं का आदान-प्रदान करना और श्रावस्ती के धार्मिक व सांस्कृतिक महत्त्व को उजागर करना था ।

आयोजन के मुख्य आकर्षणों में से एक था 23 नवंबर, 2024 को बलरामपुर में आयोजित 'भव्य काव्य संध्या और सम्मान समारोह'। इस काव्य संध्या में देश के विभिन्न हिस्सों से पधारे सुप्रसिद्ध कवि और कवयित्रियों ने अपनी रचनाओं का पाठ किया । स्थानीय कवियों और शायरों ने भी अपनी उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत कर दर्शकों का मन मोह लिया । इस कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रख्यात गीतकार डॉ. जय सिंह आर्य ने की । विशिष्ट अतिथियों में हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी के अध्यक्ष और हिन्दी अकादमी, दिल्ली के कार्यकारिणी सदस्य श्री सुधाकर पाठक, डॉ. शाद बलरामपुरी, जनाब बिलाल खालिद और श्री अंबरीश शुक्ला उपस्थित रहे ।

इस अवसर पर श्री सुधाकर पाठक ने अपने संबोधन में कहा कि आज देश में जैसा माहौल चल रहा है, उसमें सामाजिक सद्भाव को बनाए रखना बहुत आवश्यक है । साहित्य और संस्कृति ऐसी शक्तियाँ हैं, जो समाज को जोड़ने और एकता को बढ़ावा देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं । उन्होंने 'हम सब साथ साथ' संस्था की सराहना करते हुए कहा कि यह संस्था पिछले 11 वर्षों से सोशल मीडिया के माध्यम से लेखकों, कवियों और कलाकारों को एक मंच प्रदान कर रही है, जिसके परिणामस्वरूप यह मैत्री सम्मेलन एक अनूठा मंच बन गया है । पिछले वर्ष से यह सम्मेलन 'हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी' के संयुक्त तत्त्वावधान में किया जा रहा है । इस मैत्री सम्मेलन में संस्था से सोशल मीडिया के माध्यम से जुड़े लेखक, कवि एवं अन्य कलाकार एकत्रित होते हैं और अपनी-अपनी कलाओं का प्रदर्शन करते हैं । कार्यक्रम का संचालन सुप्रसिद्ध युवा कवयित्री डॉ. भावना तिवारी और जनाब रईश सिद्दीकी ने संयुक्त रूप से किया । उनकी सुमधुर आवाज और प्रभावी संचालन ने कार्यक्रम को और भी आकर्षक बनाया ।

काव्य पाठ करने वालों में शामिल थे- सुश्री अंजू मोटवानी (इंदौर), सत्य कुमार प्रेमी (नोएडा), गीता दत्त सहरिया (गुवाहाटी), सुरेंद्र सिंह राजपूत (देवास), सुश्री तूलिका सेठ (गाजियाबाद), उमाशंकर मिश्र (टीकमगढ़), सरिता गुप्ता (दिल्ली), संगीता राज (दिल्ली), डॉ. रवि शर्मा (दिल्ली), सुश्री पदमा तिवारी (दमोह) और श्री विनोद पाराशर (दिल्ली) आदि । स्थानीय कवि एवं कवयित्रियों में सुश्री रिचा मिश्रा, अहमद रजा, पीके प्रचंड, रईश सिद्दीकी साहब, मोहम्मद याकूब सिद्दीकी, देवेश कुमार बलरामपुरी, वीरेश पांडे, बंपर बहराइची और अंबरीश शुक्ला ने भी अपनी कविताओं का पाठ किया । कार्यक्रम में डॉ. सुधा शर्मा (दिल्ली), सुश्री निशा गोयल (दिल्ली), सुश्री सरिता भटिया (दिल्ली), सुश्री शालिनी सक्सेना (नोएडा) श्री आर.सी. मोटवानी (इंदौर) और ओजेंद्र तिवारी (दमोह) भी उपस्थित रहे ।

इस कार्यक्रम के मुख्य संयोजक श्री किशोर श्रीवास्तव ने सभी अतिथियों को शाल व संस्था का स्मृति चिह्न भेंट कर सम्मानित किया । कार्यक्रम में सहभागी रहे सभी कवियों एवं अतिथियों को स्मृति चिह्न एवं सहभागिता प्रमाण-पत्र देकर सम्मानित किया गया । आयोजन के दौरान, बाहर से आए अतिथियों ने श्रावस्ती और इसके आसपास के क्षेत्रों के प्रमुख दर्शनीय स्थलों का भ्रमण किया । जिनमें शामिल थे देवीपाटन मंदिर, जेतवन मठ, आनंद बोधि वृक्ष तथा नेपाल के सीमावर्ती क्षेत्र में बसे कुछ दर्शनीय स्थल ।

तीन दिवसीय श्रावस्ती : पर्यटन एवं साहित्यिक-सांस्कृतिक आयोजन के चित्र

मेधावी छात्र एवं भारतीय भाषा शिक्षक सम्मान समारोह एवं 'भारतीय भाषा उत्सव' आयोजन : झलकियाँ

RNI No. : DELHIN/2017/73904

हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी

(भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार और संवर्धन को समर्पित संस्था)

पंजीकृत कार्यालय : म.नं. 3675, राजा पार्क, शकूरबस्ती, दिल्ली-110034
दूरभाष : 09873556781, 09968097816
E-mail : info@hindustanibhashaakadami.com
hindustanibhashabharati@gmail.com
Website : www.hindustanibhashaakadami.com